धर्मवीर जैन ग्रंथमाला पुष्प नं. २१

जैनधर्ममें शासनदेवतावोंका स्थान

लेखक व संपादक
विद्यावाचस्पति वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
सोलापूर

मूल्य पांच रुपया

प्रथमावृत्ति- १०००

१९७९

प्रकाशक :
धर्मवीर जैन ग्रंथमाला
होटगी रोड, सोलापूर

मुद्रक
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
कल्याण पॉवर प्रिटींग प्रेस,
९, इंडस्ट्रियल होटगी सोलापूर ३

आद्य वक्तव्य

जैन समाजमें शासन देवताओंकी पूजाके संबंधमें विवाद है। कुछ लोग उनकी पूजा योग्य मानते है कुछ लोग सका तीव्र निषेध करते हैं, यहांतक कि उनके पूजकोंको मिथ्या दृष्टि भी कहनेको नहीं कतराते। वस्तुत: 'पूजा' शब्दके अनेक अर्थ होनेके कारण उसमें लोग कुछ विपर्यास करते है।

प्रतिष्ठा शास्त्रमें अनेक विधान यक्षयक्षिणोके आव्हान-पूर्वक ही हुआ करते हैं। यक्षयक्षिणीके आव्हानके विना जो प्रतिष्ठा होगी उसे नाजायज ठहराया जाएगा क्या? इसका उत्तर संशोधक विद्वानोंसे अपेक्षित है।

अनेक स्थानोंमें यक्षयक्षिणोके चमत्कार देखे जाते हैं और जैन पुराणोंमे अनेक घटनाएं प्राप्त है। प्राचीन प्रतिमा-ओंके साथ भी यक्षयक्षिणी पाये जाते है, इससे यह भी स्पष्ट है कि प्राचीन कालमे यक्ष यक्षिणियोंके साथ मूर्तियां बनायी जाती थीं।

प्राचीनतम शास्त्र तिलोयपण्णत्तिमें भी यक्षयक्षियोंका उल्लेख है, अत: यह आगममान्य-सिद्ध है। शासनदेवताओंकी स्थापना देवेन्द्र करता है, देव सामान्यसे करता है, इनमें देवेन्द्र शासनभक्ति क्यों देखता है, अन्य देवोंमे शासनभक्ति नहीं है क्या? विचारार्ह बात है।

प्रतिष्ठा शास्त्रमें भी शासनदेवताओंको देवेन्द्रद्वारा नियुक्त करनेंका, उनके स्थान नियत करनेका उल्लेख है वे शासन देवता भक्ति करते है और निश्चित है शासनदेवता भक्ति करनेवाला मोक्षगामी जीव है, उसे सम्यग्दृष्टि भी सिद्ध किया है, मिथ्या दृष्टि नहीं। शासनदेवता मुक्तिगामी जीव है, हम-आप तो मुक्तिसे बहुत दूर हैं, मुक्तिगामी जीवोंका आदर करना तो उचितही है।

शासनदेवता भक्तिके समर्थनमें जैनदर्शन काफी प्रमाण देता है और यह विवाद मात्र पूजा शब्दके अनेकार्थ होनेके कारण उत्पन्न हुआ है, प्रस्तुत पुस्तक लेखनमें हमने समर्थ प्रमाण शासनदेवता भक्तिक संदर्भमे दिये है, आशा है यह पुस्तक समाजमें व्याप्त इस विवादको समाप्त करनेमें सहायक होगा।

— वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

'वर्धमान'
सोलापूर–३
१५–३–१९७९

जैनधर्ममें शासनदेवतावोंका स्थान

इस संबंधमें विचार करनेकी आवश्यकता इसलिए महसूस हुई कि आजकल अनेक विद्वान् कहलाने वाले इस संबंधमें उलट सुलट विचार प्रकट कर रहे हैं। सकृद्दर्शनसे उनके विचारोंसे लोगोंके हृदयमे चल विचलता उत्पन्न होती है। इस सबंधके पूर्वापर विचार न करते हुए, इसे अनुष्ठानमें लानेवाले लोगोंको कुछ लोग मिथ्यादृष्टि कह देते हैं। कोई कोई सज्जन विना संदर्भके ही आगे पीछेके श्लोकोंको छोडकर बीचके श्लोकको उठाकर विषयका प्रतिपादनकर अपना मतलब सिद्ध करते हैं।

कोई कोई इस विषयके प्रतिपादक ग्रन्थोंको अप्रमाण बताकर आत्मसतुष्टि कर लेते हैं परंतु मजा यह है कि अपने मतलबके लिए उसी ग्रन्थका आधार देते है।

सबसे प्रबल शस्त्र इनके पास यही हैं कि अपने मत—लबके या निर्धारित मनके विरुद्ध कोई प्रमाण जिस ग्रन्थमें हो वह अप्रमाण ग्रन्थ कह देना, मूलसंघके द्वारा वह प्रतिपादित ग्रन्थ नहीं, द्राविड़ संघका वह ग्रन्थ है, ऐसा कहना, भट्टारक

गणधरादिक परंपरासे आगत सूत्र, आगम के आश्रयसे आचार्यादिक द्वारा अच्छीतरह समझाने पर भी यदि वह जीव उस तत्वका समीचीन श्रद्धान न करे, एवं अपने हठाग्रहको न छोडे तो वह जीव उस ही समयसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है. आगमके प्रकाशमें अपनी मान्यता मिथ्या है, यह प्रामाणित होनेपर भी जो अपनी मान्यता या मिथ्याश्रद्धान का परित्याग नहीं करते हैं वे उसी समयसे मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

सारांश यह है कि जिनोक्ततत्वका यथास्वरूप श्रद्धान करनेवाला सम्यग्दृष्टि है।

आगे आचार्य ग्रन्थकार सम्यक्त्व मार्गणामे सम्यक्त्वका प्रतिपादन करते है।

छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं

आणाये अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तम्।

छहद्रव्य, पांच अस्तिकाय नवपदार्थ इनका जिनेन्द्रदेवने जिस प्रकार प्रतिपादन किया है, उस ही प्रकारसे इनका श्रद्धान करना उसको सम्यक्त्व कहते हैं। वह सम्यक्त्व दो प्रकारसे होता है. एक आज्ञासे दूसरे अधिगमसे. जीव, धर्म, अधर्म,पुद्गल आकाश, काल, एवं पंच अस्तिकाय, और जीव, अजीव, आस्रव बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप के संबंधमे, किं किंतु, ननु, नचे आदि न लगाकर जिनेन्द्रदेवने जैसा स्वरूप कहा है, वास्तवमे वह सत्य हैं इस प्रकार विनातर्क व युक्तिके प्रदर्शनसे जो श्रद्धान होता है उसे आज्ञासम्यक्त्व कहते हैं।

इनके संबंधमें प्रमाण,नय,निक्षेपादिके द्वारा जो श्रद्धान किया जाता है उसे अधिगम सम्यक्त्व कहते हैं। दोनों भी सम्यक्त्व है।

इसी बातका समर्थन आचार्य देव कुन्दकुन्द के ग्रन्थोंसे भी होता है। जो निम्न प्रकार है।

सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन किसे कहते है ?

भगवदुमास्वामी विरचित तत्वार्थसूत्रमें सम्यग्दर्शनका लक्षण करते हुए कहा गया है कि ' तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, अर्थात् जो पदार्थ जिस स्वभाववाला है उसका उसी स्वभाव—रूपसे निश्चय होना तत्वार्थ हैं, और तत्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

पूज्यपादने इस सम्यग्दर्शनका दो भेद किया हैं। सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन. प्रशम, संवेग, आस्तिक्य और अनुकंपाकी अभिव्यक्तिलक्षणवाला सराग सम्यग्दर्शन है, आत्मविशुद्धिका नाम वीतराग सम्यग्दर्शन है.

आचार्य समंतभद्रने सम्यदर्शन का भेद व्यवहार व निश्चय का विचार करते हुए सम्यग्दर्शनका यों लक्षण किया है।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥
रत्नकरंडश्रावकाचार

निर्दोष देवशास्त्र और गुरूका, (श्रद्धान करना) तीन मूढता रहित, अष्टअंगसहित, अष्टमदरहित श्रद्धान करना यह सम्यग्दर्शन कहलाता है।

उमास्वामीके उपर्युक्त तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् के लक्षणमें और आचार्य समंतभद्रके लक्षणमें समन्वय कैसे ? ऐसा कोई विचार करे तो हम स्पष्ट सूचित करना चाहते हैं कि उनमे कोई विरोध ही नही हैं। क्योंकि निर्दोष बाधारहित आगम अर्थात् तत्वोंका उपदेश निर्दोष आप्तके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता है। उसके उपदेशका ही नाम तत्व अथवा आगम है, उसके अनुसार चलनेवाले तपस्वी यथार्थ गुरु हैं, इसलिए उपर्युक्त लक्षणमें यह लक्षण अंतर्भाव हो जाता है।

समय परस्पर खींचातानीसे इस प्रकारका भेद पड गया तथापि हम दोनो एकही आगमकी छत्रछायामे चलते हैं तो हमें आपसमें विवाद करनेकी आवश्यकता नही है। हमें तो बहुत प्रेमके साथ रहना चाहिए। यही कारण है कि आज हमारे समाजमें पंथभेद होते हूए भी कोई विरोध नही है। मतभेद होते हुए भी मनभेद नहीं है।

हमने राजस्थानके दौरेमे ऐसे कई मंदिर देखें हैं जहां-पर दोनो पंथवाले अपनी अपनी मान्यताके अनुसार पूजा अभि-षेक कर सकते हैं। जिनको शासनदेवतावोंका सत्कार करना हो करो, जिनको न करना हो मत करो। अपने अपने आम्ना-यके अनुसार पूजा करो। धीरे धीरे वस्तुस्वरूप समझनेके बाद सब ठीक हो जावेगा। ऐसे माननेवाले विद्वानाको मिथ्या-दृष्टि करार दे दिया जाय तो इस तरह जैनसमाजके तेरा लोग या तेरा के प्रतिनिधि लोग सम्यग्दृष्टि बन जायेंगे बाकी के सभी मिथ्या-दृष्टि ठहर जायेंगे। इसलिए इस ग्रन्थमें हमने यह विचार कर-नेका निश्चय किया है कि जैनधर्ममें शासनदेवतावोंका स्थान क्या है? लोग जैसे हौवा बनाकर इस बिषयको जनसाधारणके समक्ष रखते हैं, उसी प्रकार यह है क्या? निस्पक्ष, निराग्रह व शांतचित्तसे इसका परिशीलन करे। सम्यग्दृष्टिसे विचार कर-नेपर सत्यका दर्शन होगा, सत्यविरहितदृष्टिसे विषय को देखनेपर सत्यरूपका अवलोकन नहीं हो सकता है।

प्रकृत विषयक विचार करनेके पहिले हम इसी पर विचार करते हैं कि शासन देवतावोंको मानना मिथ्यात्व है क्या? सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की व्याख्या क्या हैं? सम्य-ग्दर्शन और मिथ्यादर्शन किसे कहते है? इसका बिचार होना चाहिए।

सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

भगवदुमास्वामी विरचित तत्वार्थसूत्रमें सम्यग्दर्शनका लक्षण करते हुए कहा गया है कि ' तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, अर्थात् जो पदार्थ जिस स्वभाववाला है उसका उसी स्वभाव—रूपसे निश्चय होना तत्वार्थ हैं, और तत्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

पूज्यपादने इस सम्यग्दर्शनका दो भेद किया हैं। सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन. प्रशम, संवेग, आस्तिक्य और अनुकंपाकी अभिव्यक्तिलक्षणवाला [सराग सम्यग्दर्शन है, आत्मविशुद्धिका नाम वीतराग सम्यग्दर्शन है।

आचार्य समंतभद्रने सम्यदर्शन का भेद व्यवहार व निश्चय का विचार करते हुए सम्यग्दर्शनका यों लक्षण किया है।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्

त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥

रत्नकरंडश्रावकाचार

निर्दोष देवशास्त्र और गुरूका, (श्रद्धान करना) तीन मूढता रहित, अष्टअंगसहित, अष्टमदरहित श्रद्धान करना यह सम्यग्दर्शन कहलाता है।

उमास्वामीके उपर्युक्त तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् के लक्षणमें और आचार्य समंतभद्रके लक्षणमें समन्वय कैसे ? ऐसा कोई विचार करे तो हम स्पष्ट, सूचित करना चाहते हैं कि उनमें कोई विरोध ही नहीं हैं। क्योंकि निर्दोष बाधारहित आगम अर्थात् तत्वोंका उपदेश निर्दोष आप्तके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता है। उसके उपदेशका ही नाम तत्व अथवा आगम है, उसके अनुसार चलनेवाले तपस्वी यथार्थ गुरु हैं, इसलिए उपर्युक्त लक्षणमें यह लक्षण अंतर्भाव हो जाता है।

पूज्य अकलंक देवने भी पूज्यपादके ही लक्षण— भेद का समर्थन राजवार्तिक मे किया है।

इसके अनंतर गोम्मटसार जीवकांडमें सम्यक्त्व, मिथ्यात्वका सुन्दर विवेचन किया है।

मिथ्यात्वका लक्षण प्रतिपादन करते हुए आचार्य प्रतिपादन करते हैं कि—

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च अत्थाणं
एयंतं विवरीयं विणयं संसयिदमण्णाणं ॥

गोम्मटसार जीवकांड १५

मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे तत्वार्थ के विपरीत श्रद्धान को मिथात्व कहते हैं. इसके पांच भेद हैं, एकांत, विपरीत, विनय संशयित और अज्ञान.

सम्यक्त्वका लक्षण प्रतिपादन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि—

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं।
चलमलिनमगाढं त णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥

गो. सा. जीव. २५

अर्थात् सम्यग्दर्शनको विकृत करनेवाली प्रकृतियोसे देश घाति सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर अनंतानुबंधिचतुष्क और मिथ्यात्व सम्यग् मिथ्यात्व, इन सर्वघातिप्रकृतियोंके आगामी निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम और वर्तमान बिना फल दिये ही निकल जानेपर आत्माके जो परिणाम होते हैं, उनको वेदक या क्षयोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। वे परिणाम चल, मलिन, अगाढ होते हुए भी क्षायोपशम सम्यग्दर्शन की स्थिति पर्यंत (अंतर्मुहूर्तसे लेकर छयासठ सागरपर्यंत) नित्य कर्मनिर्जराके लिए कारण है।

औपशमिक, क्षायिकसम्यग्दर्शनका लक्षण

सत्तण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य।
बिदियकसायादुदयादो असंजदो होदि सम्मो य॥

गो. सा. जी. २६

अनंतानुबंधि क्रोध, मान, माया, लोभ, तीन दर्शन मोह-नीय मिथ्यात्व, मिश्र व सम्यक्त्व इन सात प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यग्दर्शन, और इनके क्षयसे क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है। यह चौथा गुणस्थान हैं, यहांपर संयमका बिलकुल अभाव है, क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण नामक द्वितीय कषाय का यहां उदय है। अत एव इस गुणस्थानवर्तीको असंयतसम्यगदृष्टि कहते हैं।

आगे इसकी विशेषता बताते हुए ग्रन्थकार प्रतिपादन करते हैं।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा॥

गो. सा. जी. २७.

सम्यग्दृष्टि जीव आचार्योंके द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका श्रद्धान करता है। किंतु अज्ञानवश गुरुके उपदेशसे कभी विपरीत अर्थका भी श्रद्धान कर लेता है। उस समय उसकी धारणा यह रहती हैं कि अरहंत देवने ऐसा ही कहा है, यही अरहत का उप-देश है, इस स्थितिमें विपरीत श्रद्धान करते हुए भी वह सम्य-ग्दृष्टि ही हैं। क्योंकि उसने अरहत देवका उपदेश समझकर उस तत्व का वैसा श्रद्धान किया है, परंतु—

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी॥

गो. सा. जी. २८

गणधरादिक परंपरासे आगत सूत्र, आगम के आश्रयसे आचार्यादिक द्वारा अच्छीतरह समझाने पर भी यदि वह जीव उस तत्वका समीचीन श्रद्धान न करे, एवं अपने हठाग्रहको न छोडे तो वह जीव उस ही समयसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है. आगमके प्रकाशमें अपनी मान्यता मिथ्या है, यह प्रामाणित होनेपर भी जो अपनी मान्यता या मिथ्याश्रद्धान का परित्याग नहीं करते हैं वे उसी समयसे मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

सारांश यह है कि जिनोक्ततत्वका यथास्वरूप श्रद्धान करनेवाला सम्यग्दृष्टि हैं।

आगे जाकर ग्रन्थकार सम्यक्त्व मार्गणामे सम्यक्त्वका प्रतिपादन करते हैं।

छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं
आणाये अहिगमरो सद्दहणं होइ सम्मत्तम् ।

छहद्रव्य, पांच अस्तिकाय नवपदार्थ इनका जिनेन्द्रदेवने जिस प्रकार प्रतिपादन किया है, उस ही प्रकारसे इनका श्रद्धान करना उसको सम्यक्त्व कहते हैं। वह सम्यक्त्व दो प्रकारसे होता है. एक आज्ञासे दूसरे अधिगमसे. जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल आकाश, काल, एवं पंच अस्तिकाय, और जीव, अजीव, आस्रव बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप के संबंधमे, किं किंतु, ननु, नच आदि न लगाकर जिनेन्द्रदेवने जैसा स्वरूप कहा है, वास्तवमे वह सत्य है इस प्रकार विनातर्क व युक्तिके प्रदर्शनसे जो श्रद्धान होता है उसे आज्ञासम्यक्त्व कहते हैं।

इनके संबंधमें प्रमाण, नय, निक्षेपादिके द्वारा जो श्रद्धान किया जाता है उसे अधिगम सम्यक्त्व कहते हैं। दोनो भी सम्यक्त्व है।

इस बातका समर्थन आचार्य देव कुन्दकुन्द के ग्रन्थोंसे भी होता है। जो निम्न प्रकार है।

छद्दव्वणवपयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥

दर्शनप्राभृत १९

छहद्रव्य, नवपदार्थ, पंचास्तिकाय, सप्ततत्त्व जो जिनशासन में कहे गये हैं उनके स्वरूपका जो श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

इसी अभिप्रायका एवं आचार्य समंतभद्रके लक्षणका समर्थन आचार्य सोमदेवने किया है।

आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं कारणद्वयात्।
मूढाद्यपोढमष्टांग सम्यक्त्वं प्रशमादिभाक् ॥

अंतरंग और बहिरंग कारणोंके मिलनेपर आप्त, आगम व तत्वोंका तीन मूढता रहित, आठ अंगसहित जो श्रद्धान किया जाता है उसे सम्यग्दर्शन कहते है। यह सम्यग्दर्शन प्रशम आदि गुणवाला होता है।

सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिए अंतरंग व बहिरंग कारणकी आवश्यकता होती है। अतरंग कारण दर्शन मोहनीयका उपशम क्षय, अथवा क्षयोपशम हैं। क्योंकि दर्शनमोहनीय सम्यक्त्वको घात करनेवाली प्रकृति है, जब उसका उपशम होता है तब इस आत्मामें उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो जाती है। इसके प्राप्त होनेपर जीव अपने हिताहितका विचार करनेमे समर्थ हो जाता है। सच्चे देव गुरु शास्त्रोंपर, उनके द्वारा प्रतिपादित तत्वोंपर अंतरंगसे श्रद्धान करता है।

उसके श्रद्धानसे कोई शक्ति उसे विचलित नहीं कर सकती, उस अवस्थामे उसे सराग सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। सांसारिक सर्व कार्योंको करते हुए भी वह प्रशम संवेग, आस्तिक्य और अनुकंपा गुणसे युक्त हो जाता है।

क्रोधादि कषयोंका मंद होना अपनें शत्रुकी भी हानि करनेकी भावना उत्पन्न न होना, यह प्रशम है। संसारसे भयभीत होना धर्माचरणमें अनुराग, धर्मात्मावोंसे विशेष प्रेम आदि संवेगका लक्षण है। इहलोक परलोक, पुण्यपाप, स्वर्गनरक, मोक्ष आत्मा कर्ता-भोक्ता आदिके संबंधमे आगमोक्त प्रकार विश्वास रखना आस्तिक्य गुण है। सब जीवोमें मैत्रीका व्यवहार करना, उनकी आपत्ति विपत्तिमें सहृदयताका व्यवहार करना अनुकंपा है। इस प्रकारके परिणाम उस सम्यग्दृष्टि के होते हैं। वीतराग सम्यग्दर्शन तो आत्मविशुद्धिसे संबंध रखता है।

महाकविरत्नाकरने

तत्वप्रीति मनक्के पट्टलदु सम्यग्दर्शनम्

मनमें तत्वप्रीति अथवा तत्वश्रद्धानका उत्पन्न होना सम्यग्दर्शन बतलाया है।

इस सम्यग्दर्शनके लक्षणको विभिन्न आचार्योंके मतसे बतलानेका प्रयोजन यह है कि कहीं भी कोई प्रकारका कथन विरोध नहीं है, सबका अभिप्राय यही है कि तत्वके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, फिर शासनदेवतावोंको माननेमे मिथ्यात्व क्यों है?

भगवान् अर्हत्परमेष्ठीको देव, निर्ग्रन्थ साधुवोंको गुरु एवं आप्त गुरुवोंके द्वारा प्रतिपादित तत्व स्वरूपको मानना, श्रद्धान करना जब सम्यग्दर्शन है तो उसी प्रकार जब माना जाता है तो मिथ्यादर्शन क्यों?

पिताको पिता मानना, माताको माता मानना, पत्नीको पत्नी मानना, पुत्रको पुत्र मानना, एवं शासनदेवतावोंको शासनदेवता मानना क्या मिथ्यात्व है? शासनदेवतावोंको

कोई भी तीर्थंकर या अर्हत्परमेष्ठी नहीं मानता है, उस भावसे उनका कोई आदर नहीं करता है, तो मिथ्यात्व क्यों कर हो सकता है ? यही विषय विचार करनेका स्थल है ।

इस विषयका निषेध करनेवाले सज्जन यह गल्लत कर लोगोमें भ्रम उत्पन्न करते हैं कि शासनदेवतावोंको माननेवाले उन्हे तीर्थंकरोंके समान मानते हैं, तीर्थंकरोंके समान उनकी पूजन करते हैं, उनसे अपने इष्टसिद्धि आदिकी अभिलाषा करते हैं, वगैरे वगैरे. परन्तु यह सब निराधार है, कल्पित है, दूसरोंके ऊपर आरोप करनेके लिए साधन बनाये गये हैं, इसका विस्तारसे निरूपण, हम आगे इस ग्रन्थ मे करेंगे ।

उससे पहिले यह भी विचार करना आवश्यक है कि सम्यक्त्वके प्रकरणमे फिर यह विषय आया क्यों? निषेध करनेवाले इसके लिए कौनसा आधार पेश करते हैं । इसका भी यहांपर विचार करेंगे ।

सम्यग्दर्शनकी शुद्धिसे लिए अष्टांगोंकी जैसे आवश्यकता बतलाई उसी प्रकार तीन मूढतावोंका अभाव होना भी आवश्यक बतलाया गया है । तभी 'अमूढदृष्टि' अंग की शुद्धि हो जाती है ।

तीन मूढतायें ये हैं, लोक मूढता, देवमूढता, पाखंडिमूढता इस प्रकार है । इसमे देवमूढताको सामने रखकर ये लोग शासन देवतावोंके सत्कारका निषेध करते हैं, अतः उसीपर विचार करना यहां उपयुक्त है ।

इन मूढतावोंसे देवमूढताका लक्षण ग्रन्थकारोने इस प्रकार किया है ।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसा ।।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ।।

...रत्नकरंडश्रावकाचार.

इस श्लोकका सरल अर्थ यह है कि ऐहिक फलाभिलाषासे एवं इष्टार्थवरकी प्राप्तिके लिए रागद्वेषसे मलिनित चित्तवाले देवतावोंकी उपासना करना यह देवमूढता है, इससे सम्यग्दर्शनमें मलिनता आती है।

इस श्लोकमें आशावान्, वरोपलिप्सया, रागद्वेषमलीमसा यह पद मुख्य ध्यान देने योग्य है। इहलोकसंबंधी आशासे एवं कुछ वरप्राप्ति करनेकी इच्छासे यदि रागद्वेषसे संक्लिष्ट चित्त वाले देवतावोंकी ये हमारा कुछ भला करेंगे इस अभिलाषासे पूजन करते हैं, तो वह देवमूढता है।

इस संसारमें जीवोंको राज्य, संपत्ति, ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र धन, कनक, वस्त्र, आभरण, वाहन आदि सर्व पदार्थोंकी इच्छा हमेशा होती रहती है, इन वस्तुवोंकी प्राप्तिके लिए रागद्वेषादि से युक्त देवतावोंकी उपासना करना देवमूढता है।

वास्तविक देखा जाय तो राज्य, संपत्ति व भोगको कोई देते नहीं, यह सभी साता वेदनीय कर्मके उदयसे प्राप्त होते हैं, लाभांतराय कर्मके क्षयोपशमसे इन पदार्थोंका लाभ होता है, भोगांतराय कर्मके क्षयोपशमसे भोगोंकी प्राप्ति होती है, उपभोगांतराय कर्मके क्षयोपशमसे उपभोग्य सामग्रियोंकी प्राप्ति होती है, वस्तुस्थिति जब ऐसी है तो पूर्वार्जित कर्मके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है, तब वे देवी देवतायें न हमें इन पदार्थोंको देते है, और न इनका अपहरण करते है। इस जगत्में हमें अनेक बंधु मित्र, वैद्य वनस्पति आदि अनेक वस्तुवोंसे उपकार अपकारकी क्रिया घडती है। वस्तुतः ये सब निमित्त मात्र हैं, परन्तु अपने कर्मके (निमित्तसे) अनुसार पुण्यपाप कर्मोंके उदयसे इष्टानिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। उस फलके समयमें हम उन निमित्तोंको भी उसके कारण मान लेते है, क्योंकि उनको निमि-

त्ता भी सहायिका हैं, हम कह देते हैं कि आपकी कृपासे हमारा यह कार्य हुआ है। अतः ऐसा कहना अनुचित नहीं हैं।

तब तो श्रावक चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, पद्मावती आदि शासन देवतावोंकी उपासना करते हैं, वह भी देवमूढता होगी? ऐसी शंका कोई भी करेंगे, उनका उत्तर भी श्लोकमे ही दिया गया है। यदि ऐहिक इष्टार्थको सिद्धिकी आशासे वर प्राप्त करनेकी इच्छासे यदि देवतावोंकी उपासना की जायगी तो वह देवमूढता है। यदि वे शासनके भक्त हैं, प्रभावक हैं. जिनेन्द्रभक्त हैं यह समझकर उनका आदर किया जावे तो वह देवमूढता नहीं हो सकती है. रत्नकरन्ड श्रावकाचार के टीका-कार आचार्य प्रभाचन्द्र देवके सामने भी यह शंका उपस्थित हुई होगी. उन्होने अपनी टीकामे उसका स्पष्टीकरण कर दिया है, यथा—

"नन्वेवं श्रावकादीनां शासनदेवतापूजाविधानादिकं सम्यग्दर्शनम्लानहेतुः प्राप्नोतीति चेत् एवमेतत् यदि वरोपलिप्सया कुर्यात्, यदा तु शासनासक्तदेवतात्वेन तासां तत्करोति तदा न म्लानहेतुः, तत् कुर्वतश्च दर्शनपक्षपातादूरमयाचितमपि ताः प्रयच्छन्त्येव तदकरणे चेष्टदेवताविशेषात् फलप्राप्तिर्निर्विघ्नतो झटिति न सिद्ध्यति न हि चक्रवर्तिपरिवारापूजने सेवकानां चक्रवर्तिनः सकाशात् तथा फलप्राप्तिर्दृष्टा"

यहांपर टीकाकर शंका उठाते हैं कि यदि ऐसा है तो गृहस्थोंको शासनदेवतादिका पूजाविधान भी सम्यग्दर्शनकी मलिनताका कारण हो सकता है, उस स्थितिमें आचार्य कहते हैं कि अवश्य। यदि वह वरकी अभिलाषासे की गई पूजा हो तो सम्यग्दर्शनकी मलिनताका कारण है, यदि वे जिनशासनके भक्त हैं, इस दृष्टिसे उनका सत्कार किया जाता है तो उसमे सम्य-

ग्दर्शन की कोई मलिनता नहीं हो सकती है अथवा वह सम्य-ग्दर्शनके दूषणमे कारण नहीं हैं। जिनेंद्रभक्त समझकर उनका आदर करनेपर उनके प्रति अनुरागसे वरकी इच्छा न करनेपर भी वे इष्टार्थ की पूर्ति करनेमें सहायक होते हैं। उस प्रकार उनका आदर न करे तो शीघ्र फल प्राप्ति नहीं भी हो सकती है। चक्रवर्ति से यदि हमे कोई फलप्राप्ति करनी हो तो चक्रवर्ति के सेवकपरिवारको प्रसन्न किये विना फल प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिए जिनेंद्र शासनके वे भक्त हैं। ऐसा समझकर विना किसी अभिलाषासे उनका आदर करनेपर इसमें देवमूढता का दोष नहीं है। इस श्लोकसे स्पष्ट ध्वनित होता है। तथापि लोग आचार्य संमतभद्रके इसी श्लोक को सामने लाकर शासन देवतावोंकी उपासना को देवमूढताकी श्रेणीमें ढकेल देते हैं। यह लोगोंकी आंखोमें धूल झोकना है। इसमे पक्षपातकी क्या आवश्यकता है, श्लोकके हृदयको हम और आपकी अपेक्षा टीकाकर आचार्य अधिक अच्छी तरह जान सकते हैं।

पंचाध्यायीकार देवमूढता का लक्षण इसी प्रकार प्रति-पादन करते हैं।

अदेवे देवबुद्धिः स्यादधर्मे धर्मधीरिह ॥
अगुरौ गुरुबुद्धिर्या ख्याता देवादिमूढता ॥

अदेवमे देव बुद्धिका होना, अधर्ममे धर्मबुद्धिका होना, अगुरुमें गुरु बुद्धिका होना देवमूढता कही गई है।

इस व्याख्यासे भी शासन देवतावोंको मानना कोई देव-मूढता नहीं हो सकती है। शासनदेवतावोंको माननेवालोंकी बुद्धि अदेव में देवत्व की बुद्धि नहीं है। वे भगवान् अर्हत को ही देव समझते हैं, निर्ग्रंथ साधुवोंको ही गुरु कहते है, वस्त्र धारी नाना प्रकारके आमोदप्रमोदमे पडे हुए संसारी अव्रती

को सदगुरू कभी नही कहते हैं। भगवान् अर्हत्परमेश्वरके द्वारा प्रतिपादित तत्वको ही आगम कहते हैं। उनके द्वारा प्रति—पादित तत्वको ही धर्म कहते हैं। शासनदेवतावोंको अर्हत मानकर उपासना नहीं करते हैं। शासनदेवतावोंको शासन भक्त समझकर ही आदर करते हैं, ऐसी स्थितिमें लोकमूढता या देवमूढता क्यों कर हो सकती है, इसे सुज्ञ विचारशील बंधु सोच सकते हैं।

इसलिए देवतामूढताका स्पष्टीकरण करते हुए बृहद्द्रव्य-संग्रहके टीकाकार वरोपलिप्सया व रागद्वेषमलीमसाः, पदोंका स्पष्टीकरण करते हुए लिखते है कि-

"ख्यातिपूजालाभरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रराज्यादि-विभूतिनिमित्तरागद्वेषोपहतार्त्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपालचंडिकादि-मिथ्यादेवानां यदाराधनं करोति जीवस्तद्देवता मूढत्वंभण्यते"

यहां ग्रन्थकारने स्पष्ट लिखा है कि ख्याति, लाभ, पूजा, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री, राज्यादि विभूति में निमित्त रागद्वेषसे युक्त आर्तरौद्रध्यानसे परिणत क्षेत्रपाल चंडिकादि मिथ्यादेवतावोंको जो पूजा की जाती है वह देवतामूढत्व है। इसमें न तो शासनदेवतावोंके सत्कारका प्रश्न है, और न शासनदेवतावोंका संबंध ही है। ऐहिक फलकी अपेक्षासे जो मिथ्यादेवतावोंकी उपासना करते हैं उनका यह कार्य देव—मूढत्वमें आता है, यहां क्षेत्रपाल चन्डिका आदि मिथ्या देवतायें हैं, यह ग्रन्थकारने स्पष्ट किया हैं।

शासनदेवता मिथ्यादेवता नहीं है, क्षेत्रपाल नामक, चन्डिका नामक मिथ्यादेवता हैं, उनकी पूजा करना यह मिथ्या है, इसे कौन इनकार कर सकता है?

तात्पर्य यह है कि देवमूढता का लक्षण करते हुए मिथ्या-देवतावोंके पूजनका निषेध किया है, शासनदेवतावोंके सत्कारका नहीं, शासनदेवतावोंका भी कोई वहांपर ग्रहण करें तो भी वरोपलिप्सया, आशावान् इन पदोंपर लक्ष्य देना चाहिये। वरकी अभिलाषासे एवं ऐहिक ख्यातिलाभ पूजादि की अभि— लाषासे उनकी उपासना न करे। शासनभक्त होनेके कारण उनका सत्कार करे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है ?

अतः इस प्रकरणको निम्नप्रकारसे विभक्त कर हम विचार करेंगे जिससे विषयका अच्छीतरह स्पष्टीकरण हो जावेगा। तत्संबंधी सारीशकावोंका भी निराकरण हो जावेगा।

हमारा विचारक्रम निम्नलिखित प्रकार रहेगा।

(१) पूजा शब्दका शास्त्रीय अर्थ क्या है ? शासनदेवोंकी पूजामें भगवान् अर्हतकी पूजामें क्या अन्तर है ?

(२) शासनदेवतावोंके संबंधमें जैनागममें कहां कहां उल्लेख आया है ? उनका विवेचन.

(३) शासनदेव क्या है ? वे सम्यग्दृष्टि होते हैं इस संबंधमें प्रमाण. अतः उनका आदर होना चाहिये।

(४) शासनदेवतावोंके प्रभावके कुछ उदाहरण.

(५) उनके समादरका ग्रन्थोंसे समर्थन व प्रमाण.

(६) विरोधियों द्वारा उपस्थित युक्ति और आगम प्रमाणोंपर विचार. जिससे विषयका विपर्यास किस प्रकार किया जाता है, यह लोगोंको मालुम हो जाय.

(७) शासनदेवता सत्कार मिथ्यात्व नहीं है।

(८) कुछ आवश्यक व संबंधित विषय

(९) उपसंहार

इस क्रमसे ही हम विषयका स्पष्टीकरण करेंगे जिससे स्वाध्यायप्रेमियोंको विषयका कुछ समझनेमें सहूलियत होगी.

(१) पूजा शब्दका क्या अर्थ है ?

यह सब विवाद पूजा शब्दके अर्थको ठीक न समझनेके कारण उपस्थित हुए हैं। पूजा करनेका अर्थ, अरहन्तके भगवंतकी जैसी पूजा की जाती है उसीप्रकार अन्य देवीदेवताओंको भी की जाती है, इस तरह लेनेके कारण उपस्थित होते हैं। शासनदेवताओंकी पूजा करनेवाले कोई भी ऐसा अर्थ नहीं करते हैं, शासनदेवता—पूजाका विरोध करनेवाले मात्र उस प्रकार अर्थकर लोगोंपर व्यर्थ आरोप करते हैं।

लोकमें हमसे जो गुणोंसे श्रेष्ठ हैं ऐसे भगवान्, गुरु, माता पिता, ज्येष्ठबंधु, वृद्धजन आदि हमारे लिए पूज्य होते हैं, अर्थात् उनकी हम पूजा करते हैं. उन सबके सामने आने—पर हमारे हृदयमें एकसदृश पूजाके भाव उत्पन्न नहीं होते हैं, जैसे जैसे हमारे लिए वे पूज्य है उसी प्रकारके परिणाम हमारे हृदयमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु सबके लिए पूजा सामान्य शब्दका ही प्रयोग किया गया है. इसका सीधा अर्थ है कि पूजा तो अवश्य करें, परन्तु यथायोग्य. पूज्य पात्रको देखकर परिणाम भी उसी प्रकार होता ही है। उदाहरण के लिए हम यहांपर एक विषय उपस्थित करते हैं। पात्रोंके तीन भेद है, उत्तम, मध्यम, व जघन्य. इन तीनों पात्रोंको नवधाभक्ति करनेका विधान ग्रन्थकारोंनें किया है। यथा—

प्रतिग्रहोच्चासनपाद्यपूजाः प्रणामवाक्कायमनःप्रसादाः ।
विधाविशुद्धिश्च नवोपचाराः कार्या मुनीनां गृहमेधिभिश्च ॥

दानशासन—वासुपूज्य १४

इसमे पूजा शब्द आया है, अर्थात् तीनों ही पात्रोंकी पूजन करना आवश्यक हैं। क्या तीनों ही पात्रोंकी पूजन एकसरीखी हो सकती है या होगी? कभी नहीं. परिणाम एकसरीखा नहो

रह सकता है,इस दृष्टिसे पूजा सामान्यका प्रयोग होनेपर भी शासनदेवतावोंकी पूजामें एवं अर्हत्पूजाके परिणाममें अन्तर है, यहां तो मंत्र व क्रियामे भी अन्तर है, ऐसी सामान्य शब्दका अर्थ लेकर विवाद खडा कर देना उचित नहीं हैं ।

दूसरी बात पूजा शब्दके अनेक अर्थ हो सकते हैं। इसलिए पूजा शब्दका प्रयोग एकसा करनेपर भी प्रकरण गत विषयको लेकर तदनुकूल अर्थ करना यह बुद्धिमत्ता है. शास्त्रोमे जो पद आये हैं उनका संदर्भगत अर्थ करना समुचित है. यथा सैंधव शब्दका अर्थ लवण भी होता है, घोंडा भी होता है. भोजन करते समय किसीने सैंधव को मांगा तो घोंडा लाकर खडा कर देना उचित नहीं हो सकता है । भोजनोपरांत कपडा पहनकर सज्ज होकर बाहर जाने के लिए निकाला तो सैंधवकी अपेक्षा की तो क्या उस समय लवण लाकर दे दिया जाय तो क्या विवेकका दर्शन हो सकता है ? इसी प्रकार पूजा शब्दके अर्थमें प्रकरणगत विषयका ध्यान रखना चाहिये ।

अब हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि पूजा शब्दका एक अर्थ नहीं हैं, अनेक अर्थोमे वह पद प्रयुक्त होता है । इस विषयको जानने के लिए अनेक कोषगत अर्थोको जानना उपयुक्त होगा, हमारे वाचक ध्यानपूर्वक उन अर्थोंका अवलोकन करें ।

हमारे सामने जो कोष उपलब्ध हैं उनसे ही हम पूजा शब्दके अर्थपर प्रकाश डालते हैं ।

पद्मचंद्र कोष, पृष्ठ संख्या २८४

पूजाः- (स्त्री) पूज+अ. अथवा 'ल्युट्' पूजनम
(न) इत्यादि.

अमरकोषः- द्वितीयकांड श्लोक ३४

पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः ॥

पूजा, नमस्या, अपचिति, सपर्या, अर्चा, अर्हणा, ये पूजाके ही पर्यायवाची, शब्द हैं। इसमें नमस्कार करनेका भी नाम पूजा कही गई है, अपचिति, सपर्या, अर्चा, अर्हणा, पूजाके ही वाचक हैं।

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ अलहाबाद प्रकाशनमें अपचिति आदि शब्दोंका यह अर्थ दिया गया है।

अपचितिः- अनेक अर्थोंके साथ, क्षतिपूरणं व पूजन यह अर्थ भी दिया गया है।

अर्चाः- पूजा, श्रृंगार, पूजन करनेकी मूर्ति,

अर्हणाः- सम्मान, प्रतिष्ठापूर्ण व्यवहार

सपर्याः- पूजन, अर्चन, सेवा, परिचर्या,

इसी कोषमें पूजा शब्दका अर्थ निम्न प्रकार किया दिया गया है।

पूजनः—अथवा पूज्ः— पूजना, पूजन करना, सम्मान करना, सम्मानपूर्वक स्वागत करना,

हिंदीबालबोधकोषः-भार्गवकृत, वाराणसीप्रकाशन पृ. २४१

पूजाः-(सं. स्त्री)पूजन, अर्चन, आराधना, आदर, सत्कार. इसी प्रकार और भी देखिये।

प्रामाणिक हिंदी कोष वाराणसी प्रकाशन पृ. नं.७२०

पूजाः- (स्त्री)(सं):- १ वह कार्य जो ईश्वर या देवी देवताको प्रसन्न या अनुकूल करनेके लिए श्रद्धा व भक्तिपूर्वक किया जाय. २. किसी देवी देवतापर जल फूल आदि चढाकर या उनके आगे कुछ रखकर किया जानेवाला धार्मिक कार्य, अर्चा.

३. आदर सत्कार, खातिर, ४. किसीको प्रसन्न या अनुकूल करने के लिए उसे कुछ देना, ५. दंड, सजा,

इसी प्रकार मराठी शब्दकोषमें भी पूजनका अर्थ पूजना, अर्चना करना व सम्मान करना लिखा है।

Sanskit English Dictionary by V. Apte. Part II Prakashan Poona P. No. 1013.

पूजा:- (पूज्-भावे-अ) *Worship honour adoration, respect, Homage,* प्रतिबध्नाति हि श्रेयः, पूज्यपूजा व्यतिक्रमः। *R. 1-79.*

इसमें भी पूजा शब्दके अनेक अर्थ बतलाये गये हैं। अंग्रेजीमे पूजा शब्दका *Worship* अर्थ के साथ *Honour* माने आदर करना, गौरव करना, सम्मानित करना, यह भी अर्थ लिया गया है।

Worship शब्दका अर्थ कोषकार क्या करते हैं। यह भी देखना चाहिए।

English Canarese School Dictionary P. 513

Worship:- ಪೂಜೆ(पूजा) ಆರಾಧನೆ(आराधना)(भक्ति) ಭಕ್ತಿ, सम्मान(ಸನ್ಮಾನಿಸು)

English Kannada Nighantu Mysore University Publication P. No-1468

Worship:-ಪೂಜಿಸು (ಸಾ.ಕ್ರಿ.) (ಪ್ರಾಚೀನ.) ಯೋಗ್ಯತೆ (योग्यता) ಗಣ್ಯತೆ (गण्यता) ಅರ್ಹತೆ (अर्हता) ಗೌರವ [गौरव] ಮನ್ನಣೆ [सम्मान] ಮರ್ಯಾದೆ [मर्यादा]

इन बातोंके अवलोकनसे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि पूजा शब्दका अर्थ केवल अष्टद्रव्योंसे पूजा करना, नहीं है अपितु सत्कार करना, सम्मान करना, गौरवान्वित करना,

स्वागत करना यह अर्थ भी उस पूजा शब्दका अभिप्रेत है। इस लिए पूज्य पात्रोंकी योग्यतानुसार पूजापदके अर्थमें भी विभिन्न अर्थ लिया जाना चाहिये। यथायोग्य सम्मान करना पूजाका अर्थ हैं। इसलिए अर्हन्त देवोंके समान शासनदेवतावोंकी भी पूजा की जाती है, यह प्रचारकर जो दोषारोपण किया जाता है वह व्यर्थ है। अर्हंत व शासनदेवतावोंकी पूजनमें क्या अन्तर है इसे हम आगे विवेचन करेंगे।

इस प्रकरणमें पूजा शब्दके कितने अर्थ होते हैं। प्रकरण गत अर्थ क्या मानना चाहिये इसका विवेचन हम कर चुके हैं, यदि प्रकरण गत अर्थको स्वीकार न करें तो बहुत अनर्थ हो सकता है। आगे पीछे व वर्तमान के संदर्भको ध्यानमे लेना चाहिये।

इसलिए जैनाचार्योंने स्पष्ट रूपसे निरूपण किया है कि शासन देवतावोंको तीर्थंकरोंकी बराबरी में कोई पूजा करता है वह अधोगतिमें जाता है। यदि उन्हे शासनदेवता समझकर यथायोग्य समादर करता है, तो अनुचित बात नहीं हैं। सो इस प्रकारका सार अंश है।

अतः पूजाके शब्दार्थको ठीक तरहसे समझ ले, एवं उसे अच्छीतरह सोच ले, तदनन्तर ही आक्षेपक आक्षेप करे, उससे पहिले नहीं हमारा विश्वास है कि शास्त्रो में कहीं भी तीर्थंकरोंके समान पूजन शासन भक्तोंका नहीं हैं, पूजन यथायोग्य ही होती है, इसमें कोई विवाद नहीं हैं।

—००—००—

दोनोंकी पूजामें अंतर

शासनदेवतावोंकी पूजा व अर्हत्परमेष्ठी, तीर्थंकर आदि पूजाकी विधि, मंत्र, मुद्रा, आदिमें भी अंतर है। इसे भी जानना आवश्यक है।

हम उदाहरणके लिए एक पूजाका यहां उल्लेख करते हैं। अर्हत्परमेष्ठीकी प्राचीन पूजा इस प्रकार है।

अर्हत्परमेष्ठी पूजा

आव्हायाम्यहमर्हंतं स्थापयामि जिनेश्वरं।
सन्निधीकरणं कुर्वे पंचमुद्रांकितं मह ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर, अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ, अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं—

इस प्रकार आव्हान स्थापना सन्निधीकरण करनेके बाद जलादि अष्ट द्रव्योंसे पूजा की जाती है, वह भी देखिये।

शशांकपादशीतलं सुवृत्तधिस्तनिर्मलम्।
जिनेन्द्रपादयोरलं प्रपातयाम्यहं जलम् ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अनंतानंतज्ञानशक्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा। इस प्रकार मंत्र कहकर जलको अर्पण किया जाता है।

अब शासनदेवतावोंकी पूजाके क्रमको भी देखिये। यह भी प्राचीन पूजा संग्रहसे ही उध्दृत किया जा रहा है।

यक्षान् यजामो जिनमार्गरक्षान्।
दक्षान्सदा भव्यजनैकपक्षान्।
निर्दग्धनिःशेषविपक्षकक्षान्।
प्रतीक्ष्यमत्यक्षसुखे विलक्षान् ॥

ओं ह्रीं गोमुखादि यक्षदेवता अत्र आगच्छत, आगच्छत, अत्र तिष्ठत तिष्ठत अत्र मम सन्निहिता भवत भवत इति वौषट्

पूजाक्रम

सुरभिजलसुगंधैरक्षतैपुष्पवासै—।
श्चरुभिरमलदीपैर्धूपकैःसत्फलैश्च ।
युवतिपरिजनांगान् शस्त्रवाहप्रमूर्धैः ।
अनुदिनमहमंचे यक्षदेवान् समेतान् ।।

ओं गोमुखादि यक्षाः, इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गंधं, अक्षतान्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं दद्महे, प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां-स्वाहा

इन दोनों उदाहरणोंसे हमारे वाचक अच्छीतरह समझेंगे कि अर्हत्परमेष्ठीकी पूजामे एवं शासनदेवतावोंकी पूजामें क्या अन्तर हैं। जब उनके विधि मंत्रादिक में अन्तर है तो आदरमे भी अन्तर है ऐसा अर्थ स्पष्ट सिद्ध होता है। इसलिए बार बार यह भ्रम उत्पन्न किया जाता है कि शासनदेवोंकी पूजा जिनेश्वरोंकी पूजाके समान की जाती है। यह कहना असत्य है, उस प्रकारका न आगम हैं और न लोग करते ही हैं।

उपर्युक्त प्रकरणमें हमने मंत्रविधान का अन्तर दिया है। इसी प्रकार मुद्रा आदर आदिमे भी अन्तर हैं। जब तीर्थंकरोंके और शासनदेवीदेवतावोंके समादरमें अन्तर है तो उनको एक माननेका दोषारोपण क्यों किया जाता हैं? बिना कारण किसीके प्रति आरोप नहीं करना चाहिये, और न भ्रम उत्पन्न करना चाहिये।

—::—

पूज्यपूजक भाव.

इन प्रकरणोंसे यह भी समझनेकी आवश्यकता है कि इस जगत्में पूज्यपूजक भाव कहां कहां होता है। मनुष्यकी दृष्टि दो प्रकारकी होती है, एक लौकिक व दूसरी लोकोत्तर. लौकिक दृष्टिसे देखनेपर संसारमें पूज्य कौन होते हैं, इसका विचार किया जाना चाहिये।

संसारमें अपनेसे गुणोंकी अपेक्षासे श्रेष्ठ हों, अधि— कारकी अपेक्षा अधिक हों, योग्यताकी अपेक्षा बहतर हों, वह पूज्य या सन्मान्य माने जाते हैं. इसी दृष्टिसे मातापिता, पुत्र, गुरु, शिष्य, ज्ञानी, अज्ञानी, श्रीमंत गरीब, दाता एवं याचक, सबल निर्बल, आदि भेद किये जाते हैं, यदि हम किसी पदार्थ की इच्छा करते हैं, वह पदार्थ जिसके पास हो तो वह पूज्य है, हम पूजक हैं, अथवा हम याचक हैं, वह दाता है। इसी प्रकार माता पिता भी हमारे लिए पूज्य हैं, हम उनके पूजक हैं. उपर्युक्त विवेचनसे यह अच्छीतरह समझना चाहिये पूज्य पूज्यक भाव जहांपर भी हो, वहां अष्ट द्रव्योंसे भगवंतके समान ही पूजा की जानी चाहिये, ऐसा अर्थ लेना गलत होगा। कोई माता पितावोंका सम्मान अष्टद्रव्योंसे पूजाकर नहीं करते हैं। आदर करते हैं, उनकी आज्ञा मानते हैं। उनकी सेवा करते हैं, सुश्रूषा करते हैं, यही उनकी पूजा है, व्यवहार में इस पूजा के द्वारा इच्छित फलको भी प्राप्त करते हैं। यह भी हम देखते हैं।

मातापितावोंकी पूजासे सहज स्नेहकी प्राप्ति होकर पुत्रकी नानाप्रकारसे हितकांक्षणा की जाती है, गुरुवोंकी पूजा करनेमे निर्व्याज विद्याप्रदान किया जाता है, गुणगुरुवोंके सम्मानसे नाना प्रकारके गुणोंकी प्राप्ति होती है तो ऐसी पूजासे ऐहिक फलकी प्राप्ति होती है। यह सब व्यवहारनयके आश्रयसे है।

निश्चयनयसे कोई देनेवाले और लेनेवाले नहीं है, वहांपर लेने देनेका व्यवहार ही नहीं है, परन्तु व्यवहारसे उसे मानना ही पडता है, इसी बातको लक्ष्यमें रखकर भगवान् अकलंकदेवने राजवार्तिक में स्पष्ट लिखा है कि:—

शरणं द्विविधं, लौकिकं लोकोत्तरं च, तत्प्रत्येकं त्रिधा, जीवाजीवमिश्रकभेदात्, तत्र राजा देवता लौकिक जीवशरणम्, पंचगुरवः लोकोत्तरं जीवशरणम् ।

अर्थात् शरण दो प्रकारका है, एक लौकिक व लोकोत्तर. वह प्रत्येक तीन प्रकारसे विभक्त है, जीव, अजीव, जीवाजीवके भेदसे । उसमे राजा, देवता (शासनदेवता) लौकिक जीवशरण है, पंचपरमेष्ठी लोकोत्तर जीवशरण है ।

इस प्रकार लौकिक शरणमें शासनदेवतावोंका ग्रहण किया है, पंच परमेष्ठियोंको लोकोत्तर जीव शरणमें ग्रहण किया गया है।

शासन देवता आदिको सन्मान करनेसे वे प्रसन्न होकर पूजकको कुछ दे भी सकते हैं। परन्तु लोकोत्तर शरण जो पंच परमेष्ठी हैं वे कुछ भी नहीं दे सकते हैं। इस संबंधका भी विचार यहांपर अप्रस्तुत नहीं हो सकता है। क्योंकि पूज्यपूजक भावमें यह अर्थ भी अतर्निविष्ट रहता है।

क्या भक्तिसे भगवान् कुछ देते हैं ?

इस संबंधमे आचार्य समंतभद्र कहते हैं कि:—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवांतवैरे ।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥५७॥

स्वयंभूस्तोत्र

भगवान् वीतरागी होनेसे कुछ देते लेते नहीं हैं इस। बातको समंतभद्र कहते हैं ।

हे भगवन् ! आप पूर्णतया समताको धारण करनेवाले हैं, आप वीतराग बन चुके हैं। इसलिए कोई आपकी स्तुति करें, अथवा अष्टद्रव्योंसे पूजा करें, तो भी आप उसपर प्रसन्न नहीं हो सकते हैं। आप उसे कुछ दे नहीं सकते हैं। यदि आपकी कोई निंदा की तो उसपर आप क्रोधित भी नहीं होते हैं, क्योंकि आपके क्रोधादिक कषाय नष्ट हो चुके हैं, रागद्वेषसे युक्त मानव व देवतादियोंकी स्तुति या निंदा की, तो वे प्रसन्न या अप्रसन्न होते हैं, परन्तु जिनेन्द्र भगवान् वीतरागी होनेसे न प्रसन्न होते हैं। और न अप्रसन्न होते हैं। इसलिए हमें कुछ देते भी नहीं हैं. ऐसी अवस्थामें उनकी पूजा क्यों करें ? ऐसी भी शंका कोई कर सकते हैं. आचार्य कहते हैं कि भगवंतके अगणित गुणोंका स्मरण करनेसे हमारे रागादिजन्य विकार दूर होकर चित्तमें विशुद्धि होती है। यही पूजनका फल है, यही हमारा इष्टफल है।

जबतक जिनेन्द्र भगवंतकी पूजामें हम संलग्न रहते हैं, तब तक हमारे लिए पुण्यकर्मोंकी निर्जरा होती हैं। पापकर्मोंका रसभाग कम होनेके कारण जिनेन्द्र भक्तिसे मनमें विशेष आल्हाद उत्पन्न होता है, यह आल्हाद जिनेन्द्रभक्तिसे मिला। भले ही जिनेन्द्र भगवान् कुछ न दे, तथापि हमारे लिए इष्ट फलकी प्राप्ति होती है, यह क्या कुछ कम है ?

संसारमें सर्वत्र शक्ति की तरतमता देखी जाती है, सामान्य मानवकी अपेक्षा विशेष मानवकी शक्ति अधिक होती हैं, विशेष मानवसे सैनिक की शक्ति अधिक मानी जा सकती है, सैनिकसे सेनापतिकी शक्ति अधिक है, सेनापतिसे राजाकी शक्ति अधिक है, राजासे अर्धचक्रवर्तिकी शक्ति अधिक मानी जा सकती हैं, अर्धचक्रवर्तिसे चक्रवर्तिकी शक्ति अधिक है, चक्र-

वर्तिकी शक्तिसे देवेंद्रकी शक्ति अधिक है। देवेन्द्रकी शक्तिसे भी तीर्थंकरों की शक्ति महान् है, लोकमें अनुपमेय है, इनमें उत्तरोत्तर पूज्यपूजक भाव पाया जा सकता है।

देवेन्द्र अपने परिवार देवतावोंको साथमे लेकर किसीको उसके गुणके अनुसार शासनभक्तके रूपमे नियुक्त कर, लोकातिशायी समवसरणादिककी रचना कर तीर्थंकर भगवान् की सेवा करता है. देवेन्द्र कुबेर, शासनदेव आदिमें विशेष जिनेन्द्र भक्ति देखी जाती है, और अपनी अणिमादि ऋद्धियोंसे चमत्कार पूर्ण व्यवस्थासे भगवंतकी सेवा करता है. ऐसी स्थितिमें वे हमारे लिए आदरणीय नहीं है ? हम माता पिताका समादर करते हैं या नहीं ? फिर उनका आदर शासनभक्त होनेके कारण करनेमे क्या आपत्ति है, उनमें मनुष्यकी अपेक्षा अधिक अलौकिक शक्ति रहती है।

भविष्यकालमे तीर्थंकर होनेवाले जीव अभी नरकमें पडे हैं, तो भी हम भाविकालके तीर्थंकर के रूपमे हम उनका स्मरण करते हैं, नैगमनय या भाविकाल प्रज्ञापन नयकी अपेक्षासे हम उनका स्मरण करें, तो क्या आपत्ति है ? सौधर्मेंद्र भी एकभाव करके नियमसे मुक्तिको जानेवाला है, ऐसा उत्कृष्ट जीव आदरणीय नहीं तो क्या कुतर्क करनेवाले ये क्षुद्रजीव आदरणीय हैं ? सौधर्मेंद्रको ये पूज्य नहीं समझते. सौधर्मेंद्रकी पूजा अष्टविधार्चनसे मत करो। अष्टविधार्चन की पूजा पंच परमेष्ठियोंके लिए विहित है. षोडशोपचारकी पूजा इन देवी देवतावोंके लिए है, षोडशोपचारसे इनका आदर करनेमे क्या हानि है ? जिनेन्द्र भगवतको जिस प्रकार पूजा की जाती है उस प्रकारकी पूजा इनकी नहीं की जाती है, यह हम बार बार इसलिए लिखते हैं कि विरोधियोंके मस्तकमे ठीक प्रकाश पडे, क्योंकि अविवेकियोंको बार बार समझाने पर ही समझमे आता है।

देवताओंके प्रकार

देवतावोंमें दो प्रकार है, एक सम्यक् देवता, दूसरा मिथ्या-देवता. मिथ्यात्वके साहचर्यसे अपनी शक्तिको व्यक्त करनेवाले मिथ्या देवता हैं, सम्यक्त्वी देवता शासनभक्त होनेके कारण जिनशासनकी प्रभावनामें सहायता करते हैं। जिनशासन भक्त केवल धर्मप्रभावनाके लिए इन शासनभक्त देवतावोंको प्रसन्न कर अभिलषित कार्यकी सिद्धि करते हैं, अनेक आचार्योंने उन शासनभक्त देवोंको प्रसन्न कर जैनधर्मकी प्रभावना की है।

आचार्य इन्द्रनंदि मुनि वीर सं. १४६० मे हुए उन्होने उनके द्वारा निर्मित ज्वालिनीकल्पमे धर्मप्रभावनाके लिए शासनभक्त देवोंकी उपासना करनेका विधान किया है, यथा:—

सम्यग्दर्शनशुद्धो देव्यर्चनतत्परो व्रतसमेतः।
मंत्रजपहोमनिरतो नालस्यो जायते मंत्री ॥३०॥

मत्रकी सिद्धि करनेवाला मानव सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हो, मंत्र-अधिष्ठात्री देवोके अर्चनमे तत्पर हो, व्रतनिष्ठ हो, मंत्र, जप, होम आदि कार्यमें रत हो,आलसी न हो, वही यथार्थ मंत्रसाधक हो सकता है।

इसी प्रकार सं॰ १४३६ मे मल्लिषेणाचार्य नामक आचार्य हुए हैं, जिन्होने मंत्रशास्त्रपर अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है।

उन्होने भी जैन धर्मकी प्रभावना के हेतु इन शासन देव देवियोंकी आराधना करनेके लिए कहा है।

मल्लिषेण कृत ज्वालिनीकल्प देखिये।

परिमितभोजी शौचः सम्यग्दृष्टिर्व्यपेतकलुषमना: ॥
श्रीमान् गुरुपदभक्तो ज्वालिन्याराधकः स भवेत् ॥९॥

अर्थात् जो मिताहारी है, शुचिर्भूत है, सम्यग्दृष्टि है, चित्त विशुद्धवाला है, बुद्धिमान् है गुरुभक्तिसे युक्त है, वही ज्वाला-मालिनी देवी की आराधना करनेके लिए योग्य है।

मल्लिषेणसूरिके द्वारा विरचित पद्मावती कल्प भी देखिये।

निर्जितमदनाटोपः प्रशमितकोपो विमुक्तविकथालापः।
देव्यर्चनानुरक्तो जिनपदभक्तो भवेन्मंत्री ॥६॥

जिसने कामके आवेगको जीत लिया है, क्रोध कषाय को मंद किया है, विकथालापका त्यागी है, वह पद्मावती देवीकी आराधना करनेवाला है, जिनेन्द्र चरण कमलोंके भक्त है, वह यथार्थमें मंत्रसाधनके अधिकारी है। आगे और भी गुणोंको प्रतिपादन करते हुए आचार्यने प्रकरण को स्पष्ट किया है।

मन्त्राराधनशूरः पापविदूरो गुणेन गंभीरः।
मौनी महाभिमानी मन्त्री स्यादीदृशः पुरुषः ॥

जो मंत्र सिद्ध करनेमें वीर, पापसे रहित, गुणसे गंभीर, मोनी और महाअभिमानी अर्थात् स्वकर्म को करनेमें जिद्से स्थिर रहनेवाला, इद्रियोंको वशमें करनेवाला मंत्री हो सकता है।

गुरुजनहितोपदेशो गततंद्रो निद्रया परित्यक्तः।
परिमितभोजनशीलः सः स्यादाराधको देव्याः ॥

जो गुरूजनोंसे उपदेश पाया हुआ हो, तंद्रारहित हो, निद्राको जीतनेवाला हो, एवं कम भोजन करनेवाला हो वही देवीका आराधक हो सकता है।

निर्जितविषयकषायो धर्मामृतजनितहर्षगतकायः।
गुरुवरगुणसंपूर्णः स भवेदाराधको देव्याः ॥६॥

जिसने विषय और कषायोंको जीत लिया हो, जिसके शरीरमें धर्मरूप अमृतसे उत्पन्न हर्ष भरा हो तथा जो सुन्दर गुणोंसे युक्त हो वही देवीका आराधक हो सकता है।

शुचिः प्रसन्नो गुरुदेवभक्तो दृढव्रतः सत्यदयासमेतः ।।
दक्षः पटुर्बीज पदावधारी मंत्री भवेदीदृश एव लोके ।।१०।।

अर्थात् जो पवित्र हो, प्रसन्न हो, गुरु और देवमे भक्ति रखनेवाला हो, व्रतोंमें दृढ हो, सत्यभाषी हो, दयालु हो, चतुर और बीजाक्षरोंके अर्थको अवधारण करनेमे समर्थ हो, वही मंत्राराधक होनेके योग्य हैं। इस प्रकरण का उपसंहार करते हुए आचार्य कहते हैं।

एते गुणा यस्य न संति पुंसः क्वचित् कदाचित् न भवेत् स मन्त्री।
करोति चेत् दर्पवशात्स जाप्यं प्राप्नोत्यनर्थं फणिशेखरायाः ।११।

इन उपर्युक्त प्रकारके गुण जिस पुरूषमें न हों वह कदापि मन्त्रसाधक नहीं हो सकता है, यदि कोई अभिमानवश कोई मन्त्र साधन करें तो अनर्थको प्राप्त होता है।

इस प्रकरणको लिखनेका अभिप्राय यह है कि आचार्योंने उन शासनदेवियोंकी आराधना जिनधर्मकी प्रभावना के लिए करनेकी अनुमति दी है। मन्त्राराधक सम्यग्दृष्टि हो, व्रताराधक हो इत्यादि विशेषणोंके द्वारा यह भी बतलाया गया है कि इन कारणोंसे यदि उन शासनदेवदेवियोंकी आराधना करें तो सम्यग्दर्शनमें मलिनता भी नहीं होती है, व्रतको विराधना भी नहीं होती है प्रत्युत मंत्र आराधकको सम्यग्दृष्टि होना, व्रती होना आवश्यक है।

ऐसा होनेपर हीपूज्यपूजक भाव हो सकता है। आराध्य देवीके प्रति आदर हो सकता है। जिनधर्मकी प्रभावनाके लिए

जिनशासनदेवी के प्रति आदर व्यक्त करनेसे सम्यग्दर्शन मलिन नहीं होता है। नहीं तो ग्रन्थकार इस विषयका प्रतिपादन ही नहीं करते। कोई पंचगुरुवोंके शरण आकर आत्मकल्याण करनेकी भावना करते हैं, तो कोई आत्मकल्याण के साथ जिनशासनकी प्रभावना करते हैं, इन दोनोंका मार्ग अलग अलग है।

[२]

जैनागममें शासन देवतावोंका उल्लेख

जैनागममें यत्र तत्र प्रकरणोंमे शासनदेवोंका उल्लेख किया गया है, उनको शासनभक्त समझकर उनका आदर करनेका विधान है। इसलिए जिस दृष्टिसे जिस विधिसे उनका समादर करनेका आचार्योंने निरूपण किया है उसे देखनेपर इसमे कोई विरोध नहीं आता है। परंतु इसका विरोध करनेवाले बन्धुवोंके पास न कोई युक्ति है, और न आगम है। उनके पास एक अच्छा शस्त्र है, वे जिन आगमोमें इस विषयका उल्लेख है उसी आगमको अप्रमाण कोटिमें ढकेल देते हैं। मूलसंघका यह ग्रन्थ नहीं, और संघका कहकर उन आगमोंके विषयमे अश्रद्धा निर्माण करते हैं, साथमे मजा यह है कि अपने मतलबकी कोई बात निकली तो उन्हीं ग्रन्थोंका प्रमाण पेशकर देते हैं, उस समय यह ध्यान भी नहीं रहता हैं कि हमने इस ग्रन्थको अप्रमाण करार दे दिया हैं।

अब हम इस प्रकरणमे यह उल्लेख एकत्रित करनेका प्रयत्न करेंगे कि हम जैनागममें शासनदेवोंके संबंधमें कहां कहां उल्लेख आया हैं, वहां प्रकरण क्या है ? किस उद्देशसे आचार्योंने इन शासनदेवोंका उल्लेख किया हैं।

सबसे पहिले हम यतिवृषभ विरचित तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) का प्रमाण उपस्थित करते हैं। यतिवृषभ-

आचार्य जैनसिद्धांतके माने हुए आचार्य हैं जिन्होने जयधवला नामक कषाय प्राभृत ग्रन्थकी रचना की हैं। षट्खंडागम सूत्रके विषयमे टीका लिखने वाले ये आचार्य बडे ही प्रतिभाशाली सिद्धांतवेत्ता आचार्य हैं, प्राचीन हैं, त्रिलोकसार इसीका सार हैं, उन्होने अपने ग्रन्थमें २४ यक्षयक्षियोंका उल्लेख किया हैं।

जक्खणाम- तिलोयपण्णत्ती पृ. २६६ गाथा ६३४ से ६३९
गोवदण महाजक्खो तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरुओ।
मादंग विजय अजिओ बम्हो बम्हेसरो य कौमारो ॥६३४॥
छम्मुहओ पादालो किण्णर किंपुरुस गरुडगंधव्वा।
तह्य कुबेरो वरुणो भिऊडी गोमेदपासमातंगा ॥६३५॥
पुष्पकओ इदि एदे जक्खा चउवीस उसह पहुदीणं।
तित्थयराणं पासे चेट्ठंते भत्तिसंजुत्ता ॥६३६॥
जक्खीओ चक्केसरि रोहिणि पण्णत्ति वज्जसिखलया।
वज्जंकुसा य अप्पदि चक्केसरि पुरिसदत्तीय ॥६३७॥
मणवेगा कालीओ तह जालामालिनी महाकाली।
गउरी गंधारीओ वेरोटी सोलसा अणंतमदी ॥६३८॥
माणसि महमाणसिया जयाय विजया पराजिदाओय।
बहुरूपिणि कुम्मंडी पउमा सिद्धायणी ओत्ति ॥६३९॥
तिलोयपण्णत्ति

भगवान् तीर्थंकरोंके पार्श्वमें अत्यंत भक्तिसे युक्त यक्ष और यक्षी बैठती हैं जिनके नाम इस प्रकार है।

यक्षोंके नाम ये हैं:—

गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख यक्षेश्वर, तुम्बरु, मातंग विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, अक्षमार, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गधर्व, कुबेर, वरुण, भृकुटी, गोमेद, धरणेंद्र, पार्श्व, मातंग और पुष्पक,।

यक्षिणियोंके नाम ये हैं।

चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गांधारी, वैरोटी, अनंतमती, मानवी, महा-मानवी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, कूष्मांडिनी, पद्मावती, सिद्धायिनी, इस प्रकार २४ यक्षिणियां हैं।

उपर्युक्त श्लोकोमें इन २४ यक्ष व यक्षिणियोंको जिनेन्द्रके परम भक्त हैं, ऐसा उल्लेख किया गया है। इसका अर्थ वे शासन भक्त व जिनेन्द्रभक्त देव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं है। यह भी अर्थ गृहीत किया गया है। इन्ही नामोंसे प्रसिद्ध मिथ्यादृष्टि देवदेवियां भी हैं, वे अलग हैं, उनकी उपासना सांसारिक विषयोंकी पूर्तिके लिए करना वह मिथ्यात्व है, मिथ्यादेवोमें और शासनदेवोमें अंतर है।

इसी तिलोयपण्णत्तीमें अन्य व्यंतर देवोंका भी उल्लेख है, परन्तु इन यक्ष यक्षिणियोंके नाम अलगसे निर्देश किये गये हैं, इससे भी ज्ञात होता है कि ये सामान्य देव नहीं है, भगवान्के शासनभक्त होनेके कारण शासन देवता कहलाते हैं, अतः आदरणीय हैं।

इस ग्रन्थके संबंधमे प्रस्तावनामें संपादकोने लिखा है कि धार्मिक पाठक उसे उसके विषयके लिए श्रद्धासे पढेंगे, क्योंकि यह यतिवृषभ जैसे प्राचीन और प्रामाणिक आचार्यकी रचना हैं, उनके शब्दोंका हमें अवश्य श्रद्धापूर्वक आदर करना चाहिये।

इस संबंधमे अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं हैं।

—०६—

भगवज्जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराण

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांतिहेतवः।
क्रूरास्तु देवता हेया यासां स्याद्वृत्तिरामिषैः॥
पर्व ३९ श्लो. ९६

उक्त श्लोकमें आचार्यने प्रतिपादन किया है, कि विश्वेश्वरादि (जिनजननी) देवता शांतिके कारण समझनी चाहिये. जिन देवतावोंको मांसमें आनंद होता है वे क्रूर देवतायें हैं, वे हेय हैं, अर्थात् शांति प्रदान करनेवाली देवता उपादेय हैं। यहांपर आदि शब्दसे जिनजननी, श्री, ह्री धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि देवतायें एवं शासन देवतावोंको ग्रन्थकारने ग्रहण किया है। आचार्यने यह भी अभिप्राय व्यक्त किया है कि रागद्वेषमलीमस देवता क्रूर हैं, उनकी उपासना समर्थनीय नहीं है।

आगे जाकर ४० वें पर्वमें गर्भान्वयादि क्रियावोंमें प्रयुक्त होनेवाले पीठिका मंत्र आदिका निर्देश किया है। इसमें एक सुरेंद्रमंत्र है। मुनि मंत्रके बाद सुरेंद्र मंत्रका उल्लेख आचार्य-श्रीने इस प्रकार किया है।

मुनिमंत्रोयमाम्नातो मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः।
वक्ष्ये सुरेंद्रमंत्रं च यथास्माद्वाचंभीश्रुतिः॥४७॥

अथ सुरेंद्र मंत्रः

प्रथमं सत्यजाताय स्वाहेत्येतत्पदं पठेत्।
ततः स्यादर्हज्जाताय स्वाहेत्येतत्परं पदं॥४८॥
ततश्च दिव्यजाताय स्वाहेत्येवमुदाहरेत्।
ततो दिव्यार्च्यजाताय स्वाहेत्येतत्पदं पठेत्॥४९॥

ब्रूयाच्च नेमिनाथाय स्वाहेत्येतदनन्तरं ।
सौधर्माय पदं चास्मात् स्वाहेत्येतदनुस्मरेत् ॥५०॥
कल्पाधिपतये स्वाहा पदं वाच्यमतः परं ।
भूयोप्यनुचराद्याधि स्वाहा शब्दमुदीरयेत् ॥५१॥
ततः परंपरेंद्राय स्वाहेत्युच्चारयेत्पदम् ।
संपठेदहमिंद्राय स्वाहेत्येतदनंतरम् ॥५२॥
ततः परमार्हंताय स्वाहेत्येतत्पदं पठेत् ।
ततोप्यनुपमायेति पदं स्वाहा पदान्वित ॥५३॥
सम्यग्दृष्टिपदं चास्माद्बोध्यांतं द्विरुदीरयेत् ।
तथा कल्पपतिं चापि दिव्यमूर्तिं च संपठेत् ॥५४॥
दिव्याद्यं वज्रनामेति ततः स्वाहेति संहरेत् ।
पूर्ववत्काम्यमंत्रोपि पाठ्योस्यांते त्रिभिः पदैः ॥५५॥

आदिपुराण पर्व ४०

इस प्रकार आचार्यने सुरेंद्र मंत्रके प्रयोग का क्रम बताया है, साथ ही मंत्र प्रयोग भी ग्रन्थमें इस प्रकार किया है ।

सत्यजाताय स्वाहा । अर्हज्जाताय स्वाहा । दिव्य जाताय स्वाहा । दिव्यार्च्य जाताय स्वाहा । नेमिनाथाय स्वाहा । सौध-र्माय स्वाहा । कल्पाधिपतये स्वाहा । अनुचराय स्वाहा । परंपरेंद्राय स्वाहा । अहमिंद्राय स्वाहा । परमार्हताय स्वाहा । अनुपमाय स्वाहा । सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्य मूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनाम वज्रनाम स्वाहा । सेवाफलं षट् परम-स्थानं भवतु । अपमृत्यु विनाशनं भवतु । समाधिमरणं भवतु ।

इति सुरेंद्र मंत्राः

इन श्लोकोंका व मंत्रोंका अर्थ यह है कि तत्वदर्शी मुनि-योंके द्वारा ऋषिमंत्रका प्रतिपादन किया गया है, भगवान्

वृषभ तीर्थंकर के द्वारा प्रतिपादित शास्त्रके अनुसार मैं अब सुरेंद्रमंत्रकी वन्दना कहता हूँ।

सबसे पहिले सत्य जाताय स्वाहा (मैं यथार्थ जन्म लेनेवालेको अर्पण करता हूं) नंतर अर्हज्जाताय स्वाहा (अर्हंतके योग्य जन्म लेनेवालेके लिए समर्पण) दिव्य जाताय स्वाहा (दिव्य जन्म लेनेवालेके लिए समर्पण) दिव्यार्चजाताय स्वाहा (जिसका जन्म दिव्य तेज रूप है उसके लिए समर्पण) नेमिनाथाय स्वाहा (सुरेंद्रचक्रकी धुरीका जो स्वामी हैं उसके लिए समर्पण) सौधर्माय स्वाहा (सौधर्म इन्द्रके लिए समर्पण)कल्पाधिपतये स्वाहा(इन्द्रोंके लिए समर्पण) अनुचराय स्वाहा (इंद्र के अनुचरोंके लिए समर्पण) अहमिंद्राय स्वाहा (अहमिंद्रके लिए समर्पण) परमार्हताय स्वाहा (अरहंत देवके उपासकोमें जो सर्व श्रेष्ट हैं उनके लिए समर्पण) अनुपमाय स्वाहा (उपमारहितके लिए समर्पण)

इसके बाद सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा कहकर सुरेंद्रका संबोधन किया है, एवं उसे समर्पण किया है।

इससे देवेंद्रको आदरणीय समझकर इस प्रकरणमें ग्रन्थकारने सुरेंद्रमंत्रका उच्चारण व विधान किया है, यह स्पष्ट होता है। इसके बाद परमराज्यमंत्रका उल्लेख करते हुए सुरेंद्र मंत्रके संबंधमे भी ग्रन्थकार कहते हैं कि—

सुरेंद्रमंत्र एवं स्यात्सुरेंद्रस्यानुतर्पणम् ।
मंत्रं परमराज्यादि वक्ष्यामीतो यथाश्रुतम् ॥

आ. पु. पर्व–४० श्लो. ५६.

यह सुरेंद्र मन्त्र है, सुरेंद्रके लिए यह तृप्ति करनेवाला मन्त्र है, अब परमराज्यादि मन्त्रका कथन श्रुतागमके अनुसार कहूंगा।

विवेचन:— इस प्रकरणके उल्लेखका प्रयोजन यह है कि ग्रन्थकारको देवेन्द्रका समादार करना इष्ट था, यदि वह मिथ्यात्व होता तो सुरेंद्रादि मंत्रोंका विधान क्यों करते, इससे ज्ञात होता है कि सप्तपरम स्थानोंकी प्राप्तिका उद्देश सामने रखकर हर गृहस्थको उस प्रकारकी क्रिया व प्रयोगोंको करना ही चाहिये, उसमें कोई मिथ्यात्व नहीं है।

यहांपर उत्तर भागमें उस देवेन्द्रका संबोधन करते हुए आचार्यने यह भी कहा है कि सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे अर्थात् वह सम्यग्दृष्टि जीव है, उत्तर भवसे मुक्तिको पानेवाला है, अतः उसका आदर करना हेय नहीं है।

आचार्यका विवेक

सुरेंद्र व अर्हंतमें अन्तर

सुरेंद्रमंत्र, परमराज्यादि मंत्र, निस्तारक मंत्रके प्रयोगमें और काम्य मंत्र, ऋषिमंत्र, परमेष्ठि मंत्रके प्रयोगमें अन्तर है, हमारे वाचक इसे ध्यानसे देखें।

सुरेंद्रादिक मंत्रके प्रयोगमें सिर्फ स्वाहा पदका उपयोग किया है, परन्तु ऋषिमंत्र, परमेष्ठि, सिद्ध मंत्रादिकमें नमः स्वाहा किया है अर्थात् उस प्रयोगमें नमः शब्दको जोडकर अधिक आदर व्यक्त किया है। इसलिए गृहस्थाचार्यको सुरेंद्र चक्रवर्ति आदिका केवल स्वाहा पदका प्रयोगकर आदर करना चाहिये।

संस्कारोंका उद्देश

गर्भाधानादि संस्कारोंका उद्देश यह कि वह जीव सप्त-परमस्थानोंकी प्राप्ति करके निर्वाण लाभ करें। सप्तपरम

स्थानोंके लाभसे संसारमें भी प्रभावशाली बनता है, मोक्ष—लाभ भी करता है। इसलिए आचार्यने सप्त परमस्थानोंकी प्राप्तिके लिए आदेश दिया है, वह इस प्रकार है।

सज्जातिः सद्गृहित्वं च पारिव्राज्यं सुरेंद्रता।
साम्राज्यं परमार्हंत्यं परं निर्वाणमित्यपि॥
स्थानान्येतानि सप्त स्युः परमाणि जगत्त्रये।
अर्हद्वागमृतास्वादात्प्रतिलभ्यानि देहिनाम्॥

पर्व ३८ श्लो. ६७-६८

अर्थात् सज्जातित्व, सद्गृहस्थत्व, पारिव्राज्य [मुनिदीक्षा] सुरेंद्रत्व, चक्रवर्तित्व, अर्हंतपद व अंतमें निर्वाण पद ये सात तीन लोकमें उत्तम स्थान माने गये हैं। अर्हंत परमेष्ठी के वचन रूपी अमृतके आस्वादनसे ही ये परमस्थान प्राणियोंको प्राप्त होते हैं।

इसलिए उन गर्भान्वयादि क्रियावोंमें मंत्रका प्रयोग करतें समय अन्तमे काम्यमंत्रके द्वारा यह इच्छा की गई है कि सेवा-फलं षट् परमस्थनं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि—मरण भवतु.

भगवन् ! मुझे इस सेवाके फलके रूपमें षट् परम स्थानोंकी प्राप्ति होवें, क्योंकि एक परम स्थान सज्जातित्व है ही. बाकीके छह परमस्थानोंको प्राप्त करना है, अपमृत्युका विनाश हो, समाधिमरणकी प्राप्ति हो।

इसलिए इन सप्त परमस्थानोंकी प्राप्तिपर जोर देते हुए आचार्य ३९ वें पर्वके अन्तमें स्पष्ट कहते हैं।

भव्यात्मा समवाप्य जातिमुचितां जातस्ततः सद्गृही ।
पारिव्राज्यमनुत्तरं गुरुमताद्यसाध्य यातो दिवम् ॥
तत्रैंद्रीं श्रियमाप्तवान् पुनरतः च्युत्वा गतश्चक्रिताम् ।
प्राप्तार्हंत्यपदः समग्रमहिमा प्राप्नोत्यतो निर्वृतिम् ॥
पर्व ३९ ॥२११॥

अर्थात् जो भव्यात्मा सज्जातित्वको पाकर सद्गृहित्वको प्राप्त करता है, तदनन्तर योग्य कालमें गुरु सान्निध्यमें पारिव्राज्य स्थानको प्राप्त करता है, वहांसे देवलोकमें जाकर इंद्र पदवीको प्राप्त करता है, वहांसे च्युत होकर यहांपर चक्रवर्तित्व पदको प्राप्त करता है, तदनन्तर आर्हंत्य पदको प्राप्त करता है, तदनन्तर अन्तमें मुक्तिसाम्राज्यको प्राप्त करता है, यह सप्त परम स्थानोंकी प्राप्ति है। इनकी प्राप्तिके लिए उक्त गर्भान्वय कर्त्रन्वय आदि क्रिया संस्कारोंकी आवश्यकता है।

भगवज्जिनसेनाचार्यने इन सौधर्मेंद्र और शासनदेवतावोंके आदरका ही निरूपण नहीं किया है, अपितु अस्त्र देवतावोंकी पूजनका भी समर्थन किया है।

आदिपुराण पर्व ३८ देखियेगा

दिव्यास्त्रदेवताश्चाभूराराध्याः स्युर्विधानतः ।
ताभिस्तु सुप्रसन्नाभिरवश्यंभावुको जयः ॥२६०॥

भरतेश्वरकी सेवामें उपस्थित राजावोंको संबोधन करते हुए भरतेश्वर कहते है कि राजाओ ! आप लोग न्यायसे प्रजावोंकी रक्षा करे, अन्यायमें प्रवृत्त हुए तो तुम्हारा जीवनोपाय नष्ट होगा। न्याय तो दुष्टनिग्रह और शिष्टपरिपालन है, प्रजानायकोंका कर्तव्य है कि वे सदा क्षात्रधर्मकी रक्षा करें इन दिव्य अस्त्र देवतावोंकी आराधना शास्त्रविधानसे अवश्य

करें, आपसे प्रसन्न हुई इन देवतावोंके कारण जब अवश्यं भावी है। इत्यादि.

इससे अस्त्र देवतावोंकी पूजाका समर्थन होता है, इसे भी देख ले।

भरतेश्वरने दिग्विजयके समय अपने नामसे अंकित बाण-का प्रयोग मागधामरके दरबारमे किया, मागधामर बहुत क्रुद्ध हुआ, चक्रवर्तिके लिए नानाप्रकारसे तिरस्कार युक्त वचनोंको उच्चारण कर युद्धसन्नद्ध हुआ. मन्त्री मित्रोंने उसके क्रोधको शांत करते हुए उसे समझाया कि प्रभु! बलिष्ठोंके साथ विरोध करना उचित नहीं हैं। वह भरतेश्वर चक्रवर्ति है, उसका आश्रय कर अपनेको कृतार्थ करना चाहिये। निस्संशय यह चक्रवर्तिका ही बाण है। इसमे उसके शुभनाम अंकित है। उस प्रसंगमे कहते है कि:—

तदेनं शरमभ्यर्च्य गंधमाल्याक्षतादिभिः।
पूज्याज्ञैव विभोराज्ञा गत्वास्माभिः शरार्पणात्॥

आदिपुराण पर्व २८ श्लो. १४७

इसलिए इस बाणकी गन्ध, पुष्पमाला, अक्षत आदिसे पूजाकर अभी हम लोग उसके पास जावे, इस बाणको अर्पण कर उसकी आज्ञाको मान्य करें इत्यादि.

यहां इस प्रकरणको कथन करनेका हमारा प्रयोजन यह है कि चक्रवर्तिके अस्त्रादिक अनेक देवी देवतावोंसे संरक्षित होते हैं। अतः उन अस्त्रोंकी पूजा करनेका अर्थ उनके अधि-ष्ठात्री देवतावोंका सत्कार करना हैं। शासनदेवतावोंका ही नहीं उन अस्त्रशस्त्रोंसे गृहस्थकी इष्ट सिद्धि होती है, अतः उन अस्त्र देवतावोंका भी आदर करना आवश्यक है।

महापुराण ४० वें पर्वके प्रारंभमे भगवज्जिनसेनाचार्य उत्तर चूलिका कथन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। उस उत्तर चूलिकाका भेद करते हुए बर्भान्वय, दीक्षान्वय एवं कर्त्रन्वयके भेदसे क्रियाओंका भेद करते हैं, एवं उन क्रियाओंमें प्रयुक्त मंत्रोंके कथनकी को प्रतिज्ञा करते हैं, क्योंकि क्रियासिद्धि मंत्राधीन होती है।

वहांपर सबसे पहिले चक्रत्रय, छत्रत्रय व अग्नित्रयकी स्थापना करनेका विधान है, येह अग्नित्रय क्या है? दक्षिणाग्नि गार्हपत्य अग्नि, आहवनीय अग्नि इस प्रकार अग्नित्रयोंकी स्थापना करें, प्रत्येक क्रियामें होम होना आवश्यक है, इन अग्नियोंमें पवित्रता है, अतः उनकी आराधना की जाती है, उन अग्नियोंमें पवित्रता कैसे आई? इस संबंध का विवेचन ग्रन्थकार स्वयं करते हैं।

त्रयोग्नयः प्रणेयाः स्युः कर्मारंभे द्विजोत्तमैः।
रत्नत्रितयसंकल्पादग्नींद्रमुकुटोद्भवाः ॥८२॥
तीर्थकृद्गणभृच्छेषकेवल्यंतमहोत्सवे।
पूजांगत्वं समासाद्य पवित्रत्वमुपागताः ॥८३॥
कुण्डत्रये प्रणेतव्यास्तत्र एते महाग्नयः।
गार्हपत्याहवनीय दक्षिणाग्निप्रसिद्धयः ॥८४॥
अस्मिन्नग्नित्रये पूजां मंत्रैः कुर्वन् द्विजोत्तमः।
आहिताग्निरिति ज्ञेयो नित्येज्या यस्य सद्मनि ॥८५॥
हविष्पाके च धूपे च दीपोद्बोधनसन्निधौ।
वह्नीनां विनियोगः स्यादमीषां नित्यपूजने ॥८६॥
प्रयत्नेनाभिरक्ष्यं स्यादिदमग्नित्रयं गृहे।
नैव दातव्यमन्येभ्यस्तेन्ये ये स्युरसंस्कृताः ॥८७॥
न स्वतोग्नेः पवित्रत्वं देवताभूयमेव वा।
किंत्वर्हद्दिव्यमूर्तीज्यासंबंधात्पावनोनलः ॥८८॥

ततः पूर्वांगतामस्य मत्वार्चंति द्विजोत्तमाः ।
निर्वाणक्षेत्रपूजावत्तत्पूजातो न दूष्यति ॥८६॥

व्यवहारनयापेक्षा तस्येष्टो पूज्यता द्विजैः ।
जैनैरव्यवहार्योयं नयोद्यत्वेग्रजन्मभिः ॥६०॥

इन श्लोकोंका अभिप्राय यह है ।

गर्भान्वयादि क्रियावोंमे प्रवृत्त द्विजका कर्तव्य है कि अग्नित्रयोंका संस्कार करें, अग्निकुमार देव के किरीटसे उत्पन्न गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि एवं आहवनीयाग्निका संस्कार कर उनसे गर्भाधानादि संस्कार करें. तीर्थंकर, गणधर व इतर केवलियोंके निर्वाण महोत्सवमें पूजा साधनत्वको प्राप्त होनेके कारण पवित्रताको प्राप्त हुए प्रसिद्ध गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिणाग्निको तीन कुंडोमें संस्कार करें एवं स्थापित करें, जिसके घरमें प्रतिनित्य अग्नित्रयोंकी रक्षा होती है वह आहिताग्नि श्रावक कहलाता है, नित्यपूजामें इन तीन अग्नियोंका उपयोग नैवेद्यके निर्माणमें, दीपको प्रज्वलित करनेमे तथा धूप उध्दूप करनेमें होता है, इसलिए श्रावकको उचित है कि वह अपने घरमें इन अग्नियोंकी प्रयत्नसे रक्षा करें, गर्भाधानादि संस्कारसे रहित इतरोंको इनको प्रदान न करें. यद्यपि अग्निको स्वतः पवित्रत्व एवं देवत्व नहीं है, तथापि अर्हत्परमेश्वरकी दिव्य मूर्तिके पूजासंबंधसे इस अग्निमें पवित्रता आती है, इसलिए श्रावकोत्तमोंका कर्तव्य है कि वे पूजासाधकत्वका विचार कर इसकी पूजा करें, इस कारणसे सम्मेदशिखर आदि तीर्थ-निर्वाण क्षेत्रोंकी पूजाके समान इसमें कोई दोष नहीं है, अग्निको पूज्यता व्यवहार नयकी अपेक्षा कही गई हैं, इस व्यवहार नयका आश्रय जैनियोंके द्वारा अनुसरणीय है ।

इसके बाद आचार्यने गर्भाधानादि क्रियावोंमें प्रयुक्त होनेवाला मंत्रोंका उल्लेख किया है, उसीमेंसे हमने पूर्व प्रकरणमें सुरेंद्रमंत्रका उद्धरण दिया है।

इस प्रकरणको लिखनेका प्रयोजन यह है कि व्यवहार नयकी अपेक्षासे अग्नीकी भी पूजा श्रावकोंके लिए विहित है। आचार्य जिनसेन स्वामीने बहुत स्पष्टतासे सहेतुक निरूपण किया है कि निर्वाण क्षेत्र आदि की भूमियोंमें पूज्यता क्यों आई, अनंतसिद्ध उस भूमिपर खडे होकर तपश्चर्या करते रहे एवं अपने कर्मोंका नाश किया इसलिए न ? उन सिद्धात्मावोंमें पूज्यता होनी चाहिये, हम तो उन निर्वाण क्षेत्रोंको भी पवित्र मानकर वंदना पूजादि करते हैं। इसलिए अर्हत्परमेश्वरके पूजासान्निध्यसे इन अग्नित्रयोमें भी पवित्रता व पूज्यता आगई है।

होमकर्मके लिए इन अग्नियोंकी आवश्यकता है ही, इसमें किन मंत्रोंका प्रयोग है उसका विवेचन आगे यथास्थान करेंगे।

भरतेश्वर आदि प्रभुके ज्येष्ठ पुत्र व तद्भव मोक्षगामी हैं, इसलिए उन्होंने कोई मिथ्यात्व समन्वित कार्य किया, यह कोई उच्छृंखल व्यक्ति ही कह सकता है। उनके अनुष्ठानमें, गृहस्थावस्थामें होते हुए भी कर्मनिर्जरा की निष्ठा हमे देखनेमे आती है। इसलिए उनका आचरण हमें दृष्टिपथमें रखना चाहिये।

समवसरणमें पहुंचकर उन्होने क्या किया, इस संबंधका विवेचन भगवज्जिसेनाचार्य क्या करते है, इसका भी अवलोकन कीजियेगा।

दरबारमें विराजे हुए भरतेश्वरको आयुध शालामे चक्ररत्न की उत्पत्ति, महलमें पुत्ररत्न को उत्पत्ति एवं भगवान्

आदि प्रभुको केवलज्ञानकी उत्पत्तिका समाचार एकबार मिलता है. आनंदसे व्याकुल सम्राट् एकबार स्तब्ध हुए. इन तीनो आनन्दविषयोंका समाचार मुझे एक साथ मिला है. एक तो धर्मपुरुषार्थ का फल है,(केवलज्ञानकी उत्पति)एक अर्थ पुरुषार्थ का साधन है, (चक्ररत्नकी उत्पत्ति) एक काम पुरुषार्थका फल है (पुत्रोत्पत्ति) ऐसी स्थितिमे मुझे इस समय क्या करना चाहिये।

भरतेश्वरने विचार किया कि मुझे पुण्यतीर्थ, पुत्रोत्पत्ति, एवं चक्ररत्न इन धर्म, अर्थ, कामरूपी पुरुषार्थोंकी फलोत्पत्ति एक ही समयमे हुई है, इन तीनोमे भगवान्को केवलज्ञानकी जो प्राप्ति हुई है वह धर्मपुरुषार्थका फल है, मुझे जो पुत्रोत्पत्ति हुई है वह काम पुरुषार्थका फल है, प्रकाशमान चक्ररत्नकी प्राप्ति प्रयोजनीभूत अर्थ पुरूषार्थकी सूचना या अर्थपुरुषार्थका फल है। ❁

अथवा विशेष विचार क्या ? यह सभी धर्मके फलसे प्राप्त हुए हैं। क्योंकि अर्थ तो धर्मवृक्षका फल है, काम उस फल का रस है। इससिए इन तीनोंमे सबसे श्रेष्ठ, सर्वत्र पुण्यको उत्पन्न करनेवाले, एवं इच्छित फलदायक उस धर्मकी आराधना पहिले करनी चाहिये। ★

❁ त्रिवर्गफलसंभूतिरक्रमोपनता मम।
पुण्यतीर्थं सुतोत्पत्तिश्चक्ररत्नमिति त्रयी ॥५॥
तत्र धर्मफलं तीर्थं पुत्रः स्यात्कामजं फलं।
अर्थानुबंधिनोर्थस्य फलं चक्रं प्रभास्वरं ॥६॥

★ अथवा सर्वमप्येतत्फलं धर्मस्य पुष्कलं।
यतोधर्मतरोरर्थः फलं कामस्तु तद्रसः ॥७॥
कार्येषु प्राग्विधेयं तद्धर्म्यं श्रेयोनुबंधि यत्।
महाफलं च तद् धर्मसेवा प्राथमकल्पिकी ॥८॥

अतः स्वामिसेवा-केवलज्ञानकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार भरतेश्वरने प्रभुकी केवलज्ञान पूजाको करनेके पहिले निश्चय किया। क्योंकि संसारमें धर्मात्माओंकी प्रक्रिया प्रायः पुण्यानुबंधिनी ही हुआ करती है, उनकी समस्त क्रियाओंसे पुण्यका ही बंध होता है। अतः वे समादरणीय हैं। 卐

इस प्रसंगको लिखनेका प्रयोजन यह है कि भरतेश्वरकी वृत्ति हमारे लिए समादरणीय ही नहीं अपितु अनुकरणीय भी है। आगे जाकर उन्होंने क्या किया उसपर हमें प्रकाश डालना है, हमारे वाचक ध्यानसे उस प्रकरणको देखें।

भरतेश्वर अपने अनुज बाहुबलि, आदि परिवारोंके साथ भगवान् आदि प्रभुकी पूजा के लिए समवसरणमें जाते हैं। हम अपने वाचकोंको भी समवसरणमें ले जाते हैं। देखिये:—

ततः प्रदक्षिणीकुर्वन् धर्मचक्रचतुष्टयम्।
लक्ष्मीवान्पूजयामास प्राप्य प्रथमपीठिकाम् ॥१९॥

आदिपुराण २४ पर्व

तदनंतर ऐश्वर्य संपन्न भरतेशने लक्ष्मी मंडपकी प्रदक्षिणा दी एवं प्रथम पीठिकामें पहुँचकर चार धर्मचक्रोंकी पूजा की।१९।

आगे और देखिये.

ततो द्वितीयपीठस्थान् विभोरष्टौ महाध्वजान्।
सोऽर्चयामास संप्रीतः पूतैर्गंधादिवस्तुभिः ॥२०॥

आदिपुराण पर्व २४

धर्मचक्रकी पूजाके बाद भरतेश्वरने संतुष्ट होकर दूसरे पीठमें स्थित प्रभुकी अष्ट महाध्वजाओंकी पूजा पवित्र जल-गंधादि द्रव्योंसे की ॥२०॥

卐 निश्चिकायेति राजेंद्रो गुरुपूजनमादितः।
अहो धर्मात्मनां चेष्टा प्रायः पुण्यानुबंधिनी ॥९॥

तदनन्तर गंधकुटी के बीच सिंहासनपर विराजमान भगवान् आदि प्रभुको देखा। नंतर स्तुतिस्तोत्र किया, पूजा की यह प्रकरण विस्तार से दिया गया है।

यहांपर हमें यह बतलाना है कि समवसरणमें पहुंचकर भी भरतेश्वरने पहिले धर्मचक्र व महाध्वजाओंकी पूजा की, क्या भरतेश्वर सम्यग्दृष्टि नहीं थे? आजके सम्यग्दर्शनके ठेकेदार इसका उत्तर देवें।

तद्भव मोक्षगामी व आदितीर्थंकरका पुत्र भरतेश्वर सम्यग्दृष्टि नहीं है तो क्या विपुल परिग्रह रखनेवाले स्वच्छंद व उच्छृंखल, आपको हम सम्यग्दृष्टि कहें क्या? धर्मचक्र व ध्वजाओंकी पूजा करना कोई जिनेश्वरकी पूजा तो नहीं है, फिर आप इसकी संगति कैसे बैठाल सकते हैं?

तदनंतर भरतेश्वर समवसरणसे लौटे, उन्होंने क्या किया उसका भी परिशीलन कीजिये अयोध्या नगरकी महलमे पहुंचनेके बाद:—

अथ चक्रधरः पूजां चक्रस्य विधिवद्व्यधात् ।
सुतोत्पत्तिमपि श्रीमान् अभ्यनंददनुक्रमात् ।।

आदिपुराण पर्व २६ श्लो. १

इधर भगवानका विहार कैलासकी ओर होने के बाद भरतेश अयोध्यामें पहुंचे, वहांपर संपत्तिशाली भरतेश्वरने चक्ररत्नकी पूजा यथाविधि की, अनंतर पुत्ररत्नसे उत्पन्न आनन्दोत्सव भी मनाया. (आदिपुराण)

आदिपुराणके इस प्रमाणसे यह भी सिद्ध है कि चक्ररत्नकी भी पूजा की जाती है, उसकी भी विधी है. नवरात्रिमें मंदिरोंमें जिनेन्द्र भगवन्तकी पूजा शासनदेवताओंकी पूजा एवं आयुध शालामें आयुधोंकी भी पूजा की जाती है। भरतेश्वरने

भी उसी प्रकारकी पूजा की, यह बिलकुल मिथ्यात्व नहीं है क्योंकि मिथ्यात्वका लक्षण इसमें घटता नहीं है, यह हम पहिले सिद्ध कर आये हैं।

इन प्रमाणोंसे भली भांति सिद्ध होतो है कि शासनदेवता जिनेन्द्र शासनके भक्त होनेके कारण समादरणीय हैं।

भगवज्जिनसेनाचार्यने एक बात सुन्दर कही कि जिस प्रकार हम लोग निर्वाणभूमिकी पूजा वन्दना करते हैं उसी प्रकार शासनभक्त या जिनेन्द्रभक्तोंके आदर करनेमे कोई हानि नहीं है, दोषदायक नहीं है।

इसका समर्थन पूज्यपाद आचार्य अपने ग्रन्थमे करते हैं, वह भी देखिये।

> इक्षोर्विकाररसपृक्तगुणेन लोके।
> पिष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत् ॥
> तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुषितानि नित्यम्।
> स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ॥

दशभक्ति

इक्षुरस या शक्कर आटेमें मिलानेसे उसमें मिठास अधिक आ जाती है, उसी प्रकार महापुरुषोंके सहवाससे इस जगत्की भूमियोमे पवित्रता आजाती है, वे भूमि पवित्र हैं, उनके द्वारा हमारा उद्धार होता है।

नहीं तो निर्वाण भूमि क्या है? वहां कंकर व पत्थर है, वहांपर अनेक कोटि साधकोंने आत्मसाधना की है, अनेक वर्षों-तक तपश्चर्या कर कर्मनिर्जरा की है, इसलिए उस भूमिके कण कण पवित्र हैं, इस दृष्टिसे हम उन निर्वाण भूमिकी अष्ट द्रव्योंसे पूजा करते हैं, ऐसा होनेपर भी उन निर्वाण भूमियोमें देवत्व नहीं आता है। देवोंके संबंध होनेसे वह पूज्य है। इसी

प्रकार शासनदेवतावोंकी भगवान् जिनेन्द्र देव समझकर पूजा नहीं की जाती है। वे शासनभक्त हैं इस दृष्टिसे उनका समादर करना अयोग्य नहीं है।

इसी अभिप्रायको महर्षि वादीभसिंहने भी समर्थन किया है।

पावनानि हि जायंते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ।
सद्भिरध्युषिता धात्री सम्पूज्येति किमद्भुतम् ?
कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ॥

क्षत्रचूडामणि लंब ६

अर्थात् सत्पुरुषोंके संसर्गसे अचेतन पृथ्वी भी पवित्र हो जाती है। सत्पुरूषोने जहां जहां निवास किया था वह भूमि पवित्र व पूज्य हो जाती है, इसमें आश्चर्य हो क्या है ? सिद्ध रसके संसर्गसे लोहा भी सोना बन जाता है। इसमें संदेह नहीं है, इसलिए जिनेन्द्र भगवन्तके सान्निध्यसे जिनमंदिर, मानस्तंभ आदिमे भी पूज्यता आ जाती है, फिर जिनेन्द्रभक्त-शासन देवतावोमें महत्व क्यों नहीं प्राप्त होगा ?

महर्षि वादिराजसूरि स्वरचित एकीभावस्तोत्रमे एक बात कहते हैं कि:—

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्तिः ।
मानस्तम्भो भवति च परेस्तादृशो रत्नवर्गः ॥
दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां ।
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥

एकीभावस्तोत्र

भगवन् ! मानस्तंभमें इतरोंके मानको गलित करनेकी शक्ति कैसी आई ? वह तो पत्थर का बना हुवा है, लोकमें

और भी पत्थर है, बडे बडे भी हैं, उनसे तो मानगलित नहीं होता है, नहींजो, वह रत्नसे निर्मित मानस्तंभ हैं, सामान्य पत्थरका बना हुआ नहीं है। उस प्रकारके रत्न तो लोकमें अन्यत्र भी तो रहते हैं, भले ही इतने बडे न हों, परंतु छोटे छोटे अनर्घ्यरत्न तो श्रीमानोंके पास होते हैं, परन्तु उन रत्नोंके सान्निध्यसे उलटा मान बढता है, घटता नहीं है. करोड दो करोडके रत्न पासमें हों तो उनका अहंकार इतना बढता है कि हम स्वर्गके पास ही पहुंच गये हैं, अब तो हमारे लिए स्वर्ग दो अंगुली ही रह गयी है, फिर भी उस मानस्तंभ को देखनेपर लोगोंका मानगलित क्यों होता है ? इसका एक मात्र कारण भगवन् ! आपकी सन्निधि है, आपका सान्निध्य प्राप्त होनेसे उसमे यह शक्ति आई। उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवन्तकी सन्निध शक्ति होनेसे निर्वाण क्षेत्र, शासनदेव आदिमे पूज्यता आ जाती है।

श्री देवसेन सूरिविरचित भावसंग्रह

इस ग्रन्थके कर्ता विमलसेन गणीके शिष्य देवसेनसूरि हैं, इन्होने दर्शनसार, तत्वसार, आराधनासार, नयचक्र, भाव-संग्रह आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है. वि. सं. ९९० मे इन्होने दर्शनसारकी रचना की है, इससे ज्ञात होता है कि ये आचार्य १० वीं शताब्दीमें हुए हैं। इनके ग्रन्थ महत्वपूर्ण व मान्य हैं।

प्राकृतमे रचित भावसंग्रहमे १४ गुणस्थानोंके निरूपणमे गुणस्थानोंका वर्णन बहुत विस्तृत रूपसे किया है। पंचमगुण स्थानवर्ती विरताविरत श्रावकके कर्तव्योंका, व्रत नियमोंका विस्तारके साथ प्रतिपादन करते हुए आचार्यने श्रावक धर्ममे

दान और पूजाको मुख्य कर्तव्य बतलाया है, उनके द्वारा प्रतिपादित पूजा प्रकरणमे हम अपने वाचकोंको ले जाते हैं।

अभिषेककी पूर्वक्रियाओंका वर्णन करते हैं।

पीढं मेरुं कप्पिय तस्सोवरि ठाविदूण जिणपडिमा।
पच्चक्खं अरहंतं चित्ते भावेउ भावेण ॥४३७॥

अर्थात् उस पीठमें मेरु पर्वतकी पांडुक शिलाकी कल्पना कर जिन प्रतिमाको उसपर स्थापना करें, एवं चित्तमें प्रत्यक्ष अरहंतकी भावना करें ॥४३७॥

कलसचउक्कं ठाविय चउसु वि कोणेसु णीरपरिपुण्णं।
घय दुद्ध दहियभरियं णवसय दलछण्ण मुहकमलं ॥

अर्थात् कोणोमें चार जल कलश (बीचमें एक) स्थापित कर घृत, दुग्ध, दधि, कषाय जल, इस प्रकार नौ स्थापनाकर उनको पान वगैरेसे ढकें, तदनंतरः—

आवाहिदूण देवे सुरवइ सिहिकालणेरिये वरुणे।
पवणे जखेस सूली सपिय सवाहणे ससत्थेय ॥४३९॥

नन्तर— इंद्र, अग्नि, यम, नैऋत्य, वरुण, पवन आदि यक्षोंको स्वायुधवाहन सपरिवार बुलाकर स्थापित करें एवं—

दाऊण पुज्जदव्वं बलिचरुयं तह य जण्णभायं च ॥
सव्वेसिं मंतेहि य बीयक्खरणामजुत्तेहि ॥४४०॥

तदनन्तर उनके योग्य पूजा द्रव्यको लेकर बलि व यज्ञ भागसे एवं बीजाक्षरयुक्त मंत्रोंसे उन सबका आदर करें। इसके बाद भगवान् जिनेन्द्रके अभिषेकका विस्तारसे विधान है। एवं उस पूजाविधान का फल भी बतलाया गया है, । यन्त्रोद्धारकी विधि भी बतलाई गई है। इस प्रकार विधिपूर्वक अभिषेक पूजा जो करता है वह सप्तपरमस्थानोंका भागी बनता है,

इहलोक व परलोकमें सकल संपत्तिको प्राप्त करता है। अष्ट-द्रव्योंकी पूजनकी भी अचित्य महिमा है।

इस प्रकरणसे दशदिक्पालकोंका आव्हान अभिषेकके प्रारंभमे करना आवश्यक है, यह सिद्ध होता है एवं अभिषेक भी पंचामृतोंसे होता है यह भी आचार्यने ध्वनित किया है। हमने संक्षेपसे आवश्यक प्रकरणको मात्र यहांपर लिया है, जिनको विस्तारसे देखना होवे श्रीदेवसेनसूरिविरचित भाव-संग्रहका अवलोकन करें।

श्रीवामदेवकृत–भावसंग्रह

श्री वामदेवने संस्कृतमें भावसंग्रहकी रचना की है, उसमें भी यह प्रकरण है, पाठकोंके अवलोकनार्थ उसे भी यहां उध्दृत करते हैं।

जिनेन्द्र मन्दिरमें पहुंचकर श्रावक हस्तशुद्धि, सकली करण आदि क्रिया करें। पूजापात्र, पूजा द्रव्योंकी शुद्धि-कर भूमिशुद्धि करें, भूमिपूजासे निवृत्त होकर नागतर्पण करे, एवं आग्नेयदिशामें क्षेत्रपालको स्थापना करें।

यथा:–

हस्तशुद्धिं विधायात्र प्रकुर्यात्सकलीक्रियाम्।
कूटबीजाक्षरैर्मंत्रैर्दशदिग्बंधनं ततः ॥४७॥
पूजापात्राणि सर्वाणि समीपीकृत्य सादरम्।
भूमिशुद्धिं विधायोच्चैर्दर्भाग्निज्वलनादिभिः ॥४८॥
भूमिपूजां च निर्वृत्य ततस्तु नागतर्पणम्।
आग्नेयदिशि संस्थाप्य क्षेत्रपालं प्रतृप्य वा ॥४७६॥

यहां पंचकुमार देवोंके सत्कारका विधान है। एवं क्षेत्र-पालके तर्पणका विधान है।

तदनन्तर अभिषेक पीठकी स्थापनाकर श्रीकारलेखन करें, उस पीठकी चारों ओर चार कलशोंकी स्थापना करें, जो पवित्र जलसे युक्त हों, उन कलशोंको भी अर्घ्य चढाकर पूजा करें।

तदनन्तर इन्द्र, अग्नि आदि दशदिक्पालकोंकी स्थापना करें, एवं बलि मंत्रादिके द्वारा उनको अर्घ्य प्रदान कर उन्हे संतुष्ट करें। उनके आव्हानादिमें उनके योग्य मत्रोंका उच्चारण करें।

उसके बाद इस भावसंग्रहमें भी पंचामृताभिषेक पूजनादि विधान है, उसका फल भी बतलाया गया है। यह ग्रन्थ प्राकृत का संस्कृत रूपांतर प्रतीत होता है। परन्तु श्री वामदेवको भी यह विषय मान्य था यह सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त है।

—००—

श्रीवादिराजसूरिविरचित पार्श्वनाथचरितम्

चोवीस तीर्थकरोंके यक्ष और यक्षिणियोंका विधान आगम ग्रन्थोमें मिलते हैं, प्रतिष्ठापाठोमें भी इनका विस्तृत विवेचन मिलता हैं, तथापि आजकल कुछ लोग लोगोमें भ्रम उत्पन्न करने लगे हैं। उनका कहना है कि चोवीस यक्ष यक्षियोमें पति पत्निका संबंध नहीं था. भगवान् पार्श्वनाथ तीर्थकरके यक्ष यक्षी धरणेन्द्र पद्मावती नहीं थे, ग्रन्थोमें धरणेंद्रके अलावा अन्य नामोंसे भी उसका उल्लेख मिलता है वगैरे उनका तर्क है, परन्तु इन तर्कोंमें कोई तथ्य नहीं है।

भगवान् पार्श्वनाथके यक्षयक्षी धरणेन्द्र और पद्मावती थे, और वे पतिपत्नी भी थे. उन्होने ही भगवान् पार्श्वनाथके

ऊपर कमठके द्वारा किये गये उपसर्गके समय सेवा की थी।

वादिराजसूरि भी महान् विद्वान् जैनाचार्य थे, उन्होने १० वीं शताब्दीमें अपने ग्रन्थोंकी रचना की है। उनके द्वारा रचित एकीभावस्तोत्र बहुत भक्तिसे पाठ किया जाता है, पार्श्वनाथ चरितमें उनके द्वारा प्रतिपादित प्रकरणको देखियेगा।

प्रणिहितमनसा गुरुस्तवेषु।
व्यथिततमो भुजगो विपत्तिकाले॥
अपि लघुकगणेषु देवदेवो।
न हि कुरुते सुकृतो कदाप्यवज्ञाम् ॥८५॥

पार्श्वनाथचरितं १० वां सर्ग

अर्थात् नागनागिनी उस समय मरणके सन्मुख थे, इस लिए आपत्तिकालमें पार्श्वकुमारने ज्यों ही उन्हे पंचपरमेष्टि मंत्र सुनाया, चित्तको एकाग्र कर उसने सुना, जिससे उनका अज्ञानांधकार दूर हो गया, ठीक है, धर्मात्मा पुरुष चाहे देवदेव भी क्यों न हों, तो भी तुच्छ प्राणियोंकी भी अवज्ञा नहीं करते हैं, उनपर दया दिखाते हैं।

परिगतदहनं व्युदस्य देहं।
भुजगपतिर्भवने बभूव देवः॥
समजनि भुजगी च तस्य देवी॥
विदलत्कोमलनीलनीरजाक्षी ॥८६॥

पार्श्वनाथचरितं १० वां सर्ग

चारों ओरसे अग्निसे जले हुए नाग नागिनीने प्राणोंका त्याग किया, तदनंतर वह सर्प नागभवनमें देव हुआ एवं नागिन प्रफुल्लनीलकमलके समान नेत्रवाली उसकी देवी हुई॥८६॥

पद्मावती च धरणश्च कृतोपकारं।
तत्कालजातमवधिं प्रणिधाय बुद्ध्वा ॥
आनम्रमौलिरुचिरच्छविचर्चितांघ्रि-।
मानर्चतुः सुरतरुप्रसवैर्जिनेंद्रम् ॥८७॥
पार्श्वनाथचरित्रम १० वां सर्ग.

जब वे नाग और नागिनी, धरणेन्द्र और पद्मावती हुए तो उन्हे उसी समय प्राप्त अवधिज्ञानसे उन्होने उपकारिके विषयमें ज्ञान कर लिया, शीघ्र ही भगवान्‌के समीप आये, और नम्रीभूत मुकुटोंकी मनोहर कांतिसे जिनके चरण पूजित हैं ऐसे पार्श्वनाथ भगवान् की उन्होने कल्पवृक्षोत्पन्न सामग्रीसे पूजा की ॥८७॥

अब आगेके प्रकरणको देखिये:—

कमठका वह जीव दुष्ट तपश्चर्याके कारण भूतानंद नामक असुर जातिका देव हुआ, भगवान् पार्श्वनाथने दीक्षा ली, तद-नन्तर घोर तपश्चर्या की।

भूतानन्द देव उसी मार्गसे आकाशसे जा रहा था, परन्तु जिनेन्द्र मुनिके प्रभावसे उसका विमान रुक गया, विमानके रुकते ही कारण तलाश करनेको उसने प्रयत्न किया, मुनिनाथ उसे देखनेमे आये, वह क्रुद्ध हुआ, उसका हृदय जलने लगा। शीघ्र ही वहां पहुंचकर बदला लेनेकी भावनासे तिरस्कार युक्त हंसीसे हंसने लगा, एवं अत्यंत ताडनापूर्ण वचन कहने लगा, नाना प्रकारसे भगवान्‌का तिरस्कार कर मुनिनाथके ऊपर उप-सर्ग करना प्रारंभ किया, आकाश मेघगर्जना व उल्कापातोंसे व्याप्त हो गया, विक्रियासे निर्मित अनेक पिशाचोने विकृत रूप धारण कर गर्जना करना प्रारंभ किया। उनके मुखसे अग्निकी ज्वाला निकलने लगी, लोग व्याकुलित हुए। नाना प्रकारसे मुनिनाथकी तपश्चर्यामें विघ्न उपस्थित करनेका प्रयत्न किया,

जल वर्षा, अग्निवर्षा आदिकर भगवंतके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया, परन्तु उस परम तपस्वीको तपश्चर्याके प्रभावसे कोई उपयोग नहीं हुआ। दुष्ट भूतानंदका क्रोध बढ़ता ही जा रहा था, तब धरणेन्द्र को इसका पता लगा।

पापाचारस्य दुश्चेष्टामुद्वीक्ष्य चरिचक्षुषा।
पद्मावत्या समं देवमुपतस्थौ फणीश्वरः ॥७७॥
पार्श्वनाथ चरितम् ११ वां सर्ग

पापाचारी दुष्ट भूतानंदकी दुश्चेष्टाका ज्यों ही धरणेन्द्र को पता लगा, शीघ्र ही वह पद्मावती देवी के साथ आया व भगवान्‌की सेवामें उपस्थित हो गया।

तस्य विस्तारयामास सधैर्यः स्तवपूर्वकम्।
स्फुरन्मणिरुचिस्फार स्फुटामंडलमंडपम् ॥७८॥
पार्श्वनाथचरितम् ११ वां सर्ग.

आते ही धरणेन्द्रने भगवन्तकी स्तुति की और जिसमें नाना प्रकारके देदीप्यमान रत्नोंकी कांति जगमगा रही है, ऐसे अपने फणको भगवान् के ऊपर फैला दिया।।७८।।

श्वेतच्छत्रं दधौ देवी मुक्ताधामादिवेष्टितम्।
ज्योत्स्नाकलापसंपृक्तं पार्वणेन्दुमिवापरम् ॥७९।
पार्श्वनाथ चरितं ११ वां सर्ग.

देवी पद्मावतीने भी देवोपनीत मोतियोंकी कांतिसे युक्त श्वेतछत्र भगवान्‌के उपर लगा दिया, वह ऐसे मालुम होने लगा, मानो चांदनीसे विभूषित पूर्णिमासीका दूसरा चंद्रमा ही है।

इससे विषय स्पष्ट हो जाता है, नागनागिनीके जीव ही धरणेन्द्र पद्मावती हुए, धरणेन्द्र व पद्मावती पतिपत्नी थे। उन्होने ही उपसर्गके समय भगवान्‌की सेवा की, आज भी हम

धरणेन्द्रपद्मावतीको भगवान्‌के यक्षयक्षी मानकर आदर करते हैं।

पण्डित आशाधरजीकृत त्रिषष्टि स्मृति शास्त्रमें भी धरणेन्द्रपद्मावतीका उल्लेख मिलता है।

छिन्नाबभूतां नागेन्द्रौ तद्दत्ताक्षरराञ्जितौ।
पद्मावतीधरणकौ सुभौमस्तं व्यमंस्त सः॥
दीप्तवैराग्निना सारैरुपसर्गैरुपद्रुतः।
द्विषा धरणपद्मास्तव्यापत्तिः केवलः॥

इस श्लोकका अभिप्राय ऊपर आ चुका है।

भगवत्कुंदकुंदाचार्यविरचित षट्प्राभृत

दर्शनप्राभृतकी गाथा इस प्रकार है।

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरे हि सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो॥

दर्शनप्राभृत २

इस गाथाकी टीकामें मुनिश्री श्रुतसागरसूरि लिखते हैं कि:-

मिथ्यादृष्टयः किल वदन्तिः- व्रतैः किं प्रयोजनम् आत्मैव पोषणीयः, तस्य दुःखं न दातव्यम्, मयूरपिच्छं किल रुचिरं न भवति, सूत्रपिच्छं रुचिरम् मयूरपिच्छे आभटेनं बोतिर्भवति (?) तदसत्यम्।

उक्तं च भगवत्याराधना ग्रन्थेः—

रजसे दाणमगहणं मद्दव सुकुमालदा लहुत्तं च।
जत्थेदे पंचगुणा पडिलिहणं तं पसंसंति॥

अर्थात् मिथ्यादृष्टिजन यह कहते हैं कि व्रतोंसे क्या प्रयोजन हैं, आत्मा का ही पोषण करना चाहिये. उसे दुःख नहीं देना चाहिये, मयूर पिच्छ मनोहर नहीं होता है, सूत्रपिच्छ ही अच्छा होता है। मयूर पिच्छके द्वारा हिंसादि होती है, परन्तु

यह कथन असत्य है, क्योंकि भगवतीआराधनामें कहा गया है कि—

धूलि और पसीनेका ग्रहण नहीं करना, मृदुता सुकुमारता और लघुता इन पांचगुणोंके कारण मयूरपिच्छकी प्रशसा करते हैं।

इस कथनसे आचार्यने सूत्रपिच्छके समर्थन करनेवाले ढूंढिया मतवालोंकी ओर संकेत किया है, वे मयूर पिच्छको निषेधकर सूत्रपिच्छका समर्थन करते है।

इससे आगे लिखते हैं कि—

शासनदेवता न पूजनीयाः, आत्मैव देवो वर्तते, अपरः कोपि देवो नास्ति, वीरादनन्तरं किल केवलिनोऽष्ट न तु त्रयः महापुराणादिकं किल विकथा इत्यादि ये उत्सूत्रं मन्यंते ते मिथ्यादृष्टयश्चार्वाकाः नास्तिकाः, ते यदि जिनसूत्रमुल्लंघंन तदा आस्तिकैर्युक्तिवचनेन निषेधनीयाः, तथापि यदि कदाग्रहं न मुंचंति तथा समर्थैरास्तिकैरुपानद्भिर्गूथलिप्ताभिर्मुखे ताडनीयाः, तत्र पापं नास्ति ॥

उसी ढूंढिया मतके प्रचारोंको लक्ष्यमे रखकर यह कहा गया है कि ये मिथ्यादृष्टि कहते हैं कि शासन देवतावोंकी पूजा नहीं करनी चाहिये, आत्मा ही देव है, दूसरा कोई देव नहीं है, भगवान् महावीरके बाद आठ केवली हुए, तीन नहीं, महापुराणादिक विकथायें हैं, इत्यादि प्रकारसे जो उत्सूत्र भाषण करते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं, नास्तिक हैं, चार्वाक हैं, वे यदि जिनसूत्रका उल्लंघन करते हैं, तब आस्तिकोंका कर्तव्य हैं कि वे युक्तिवचन के द्वारा उनका निषेध करें, तथापि वे अपने कदाग्रहका त्याग न करें तो समर्थ आस्तिकोंद्वारा गूथलिप्त उपानहोंसे मुखपर ताडनीय हैं, इसमें पाप नहीं है।

इन सब विवेचनोंसे यह अर्थ निकलता है कि उस समय शासनदेवतावोंकी पूजा नहीं करनी चाहिये, इस बातका कथन केवल ढुंढिया लोग करते थे, दिगंबर संप्रदायमें इस विषयका निषेध करनेवाला कोई पंथ नहीं था । इसलिए आचार्यने बहुत जोरसे उन्हे मिथ्यादृष्टि व चार्वाक कहा है। बादमें उन ढूंढिया मतके प्रभावसे दिगंबरोमें भी शासनदेवतावोंकी पूजा न करनेवाले लोग उत्पन्न हुए होंगे, परन्तु यह बात स्पष्ट है कि श्रुतसागर सूरितक तो दिगंबर संप्रदायमे इस विचारका प्रचार नहीं था, अतः यह भी सिद्ध है कि दिगंबर संप्रादयमें शासन देवता-सत्कार विरोध बहुत प्राचीन कालसे नहीं है, कतिपय वर्षोंसे ही इस विचारका उदय हुआ ।

टीकाकारके अन्तिम वाक्य कुछ कठोर प्रतीत होता है, एक साधु होकर इस प्रकारके वाक्य प्रयोंगोंको नहीं करना चाहिये, ऐसा कोई कोई अभिप्राय व्यक्त करते हैं, परन्तु उसी टीकामें आगेका श्लोक ध्यान देने योग्य है ।

धर्मनिर्मूलनध्वंसं न संहते हि धार्मिकाः ।
नास्ति सावद्यलेशेन बिना धर्मप्रभावना ।।

उत्तरपुराण

अर्थात् धार्मिक जन धर्मके समूल विनाशको सहन नहीं करते हैं, धर्मप्रभावनामें कुछ सावद्य प्रवृत्ति होती ही है, उसके विना धर्मप्रभावना संभव नहीं है ।

इन विचारोंके प्रकाशमे वह क्षम्य हैं, शासन देवतावोंको माननेवालोंके प्रति नाना प्रकारके अपशब्दोंका उच्चारण करनेवाले आज भी विद्यमान हैं, ऐसी स्थितिमें धर्मोद्योतके अभिमानी जन यदि उद्रिक्त भी होते हैं तो उसमें धर्मप्रेम ही व्यक्त होता है ।

इससे यह भली भांति सिद्ध हो जाती है कि षट्भामृत ग्रन्थके टीकाकारसे पहिले दिगंबर संप्रदायमे शासन देवतावोंको पूजन नहीं करनी चाहिये, इस प्रकारका निषेध वाक्य नहीं मिलता है।

—००—

आचार्य सोमदेव विरचित यशस्तिलक–चंपू

तदन्तर्गत उपासकाध्यय

इस प्रकरणमे शासन देवतावोंके सत्कारके संबंधमें निम्न लिखित प्रकार विवेचन है।

देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यन्तराद्याश्च देवताः ॥
समं पूजाविधानेषु पश्यन् दूरं व्रजेदधः ॥

उपासकाध्ययन श्लो. ६९७

इस श्लोकका स्पष्ट अर्थ है कि तीन लोकके अधिपति भगवान् जिनेन्द्र एवं व्यन्तरादिक शासनदेवतावोंको(तीर्थंकरोंके) समान मानकर जो पूजा करता है वह बहुत नीचे अर्थात् नरकमें जाता है।

इस ग्रन्थकी टीका श्री सिद्धांताचार्य पं. कैलासचंद्र शास्त्री ने लिखा है, उन्हीके शब्दमें प्रकरणको देखनेमें हमारे वाचकोंको सहूलियत होगी। इसलिए उनके द्वारा लिखित उस प्रकरणको ज्यों का त्यों उध्दृत करते हैं।

शीर्षक व उत्थानिका इस प्रकार हैं।

शासन देवताकी कल्पना, (कुछ व्यन्तरादिक देवता जिन शासनके रक्षक माने जाते हैं, कुछ लोग उनको भी पूजा करते हैं, उसके विषयमें ग्रन्थकार बतलाते हैं)

तदनन्तर श्लोकका अर्थ दिया गया है।

श्लोकपर एक टिप्पणी दी गई है, वह इस प्रकार है।

१. अतिशयेन अधोगामी स्यात्, तेन कारणेन अन्य देवता जिनसदृशाः न माननीयाः, किंतु जिनाद् हीना ज्ञातव्या इत्यर्थः।

श्लोकका अर्थ निम्नप्रकार दिया गया है।

"जो श्रावक तीनो लोकोंके द्रष्टा जिनेन्द्र देवको और व्यन्तरादिक देवतावोंको पूजा विधानमें समान रूपसे मानता है अर्थात् दोनोंकी समान रूपसे पूजा करता है वह नरकगामी होता है ।।६९७।।

ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिताः परमागमे।
अतो यज्ञांशदानेन माननीयाः सुदृष्टिभिः।।
तच्छासनैकभक्तीनां सुदृशां सुव्रतात्मनाम्।
स्वयमेव प्रसीदंति ताः पुंसां सपुरंदराः।
तद्धामबद्धकक्षाणां रत्नत्रयमहीयसाम्।
उभे कामदुघे स्यातां द्यावाभूमी मनोरथैः।।

उपासकाध्ययन ६९८, ६९९, ७००

(परमागमे) जिन शासनकी रक्षाके लिए उन शासन देवतावोंकी कल्पना की गई है। अतः पूजाका एक अंश देकर सम्यग्दृष्टियोंको उनका सम्मान करना चाहिये ।।६९९।। जो व्रती सम्यग्दृष्टि जिनशासनमें अचल भक्ति रखते हैं उनपर वे व्यन्तरादिक देवता और उनके इन्द्र स्वयं ही प्रसन्न होते हैं, ।।६९९।। जो रत्नत्रयके धारक मोक्षधामकी प्राप्तिके लिए कमर कस चुके हैं, भूमि आकाश दोनों ही उनके मनोरथोंको पूर्ण करते हैं ।।७००।।

भावार्थः— जिनशासनकी रक्षाके लिए शासन देवतावोंकी कल्पना की गई है, और इसलिए प्रतिष्ठा पाठोंमें पूजा विधानके समय उनका भी सत्कार करना बतलाया गया है, किंतु न,

समझ लोग उनको ही सब कुछ समझ बैठते हैं, और उनकी ही आराधना करने लग जाते हैं, जैसे आजकल अनेक स्थानोंमें पद्मावती देवीकी बडी मान्यता देखी जाती है, उनकी मूर्तिके मुकुटपर भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति विराजमान रहती है, क्यों कि उनके ही णमोकार मंत्रके दानसे नाग-नागिनी मरकर धरणेन्द्र पद्मावती हुए थे, और जब भगवान् पार्श्वनाथके ऊपर कमठके जीव व्यंतरने उपसर्ग किया तो दोनोंने पूर्वभवके उपकारको स्मरण करके भगवानका उपसर्ग दूर किया था, अतः पद्मावतीकी मूर्तिके सामने भी कुछ लोग अष्टद्रव्यसे पूजा करते हुए देखे जाते हैं, उनके आगे दीपक जलाते हैं, पदमावती स्तोत्र पढते हैं, "भुज चारसे फल चार दो पदमावती माता"।

उन ना समझ लोगोंको लक्ष्यकरके ही ग्रन्थकारने बतलाया है कि जो इन देवी देवतावोंको पूजा जिनेन्द्र भगवानकी तरह करते हैं, उनका कल्याण नहीं हो सकता है। यह तो वैसा ही है जैसा कोई किसी महाराजके चपरासीको ही महाराजाकी तरह आवभगत करने लगे। दूसरे, पद्मावती देवी आदि तो जिनशासनके भक्त हैं, और जिनशासनके भक्त वे इसलिए हैं कि उसको आराधना करनेसे, ही आज उन्हे यह पद प्राप्त हुआ है। अतः जो कोई भी जिनशासनका भक्त संकटग्रस्त होता है, धर्मप्रेमवश वे उसकी सहायता करते हैं। अपनी स्तुतिसे प्रसन्न नहीं होते किंतु अपने आराध्यकी आराधनासे स्वयं प्रसन्न होते है, अतः जो व्रती सम्यग्दृष्टि हैं वे उन देवतावोंकी आराधना नहीं करते हैं, इसलिए पं. आशाधरजीने अपने सागारधर्मामृतकी टीकामें लिखा है कि पहिली प्रतिमाके धारक श्रावक आपत्ति आनेपर भी उसको दूर करनेके लिए कभी भी शासनदेवतावोंकी आराधना नहीं करता, हां

पाक्षिक श्रावक भले ही ऐसा कर ले। अतः जो लोग मोक्षकी अभिलाषा रखकर धर्माचरण करते हैं, उन्हे मोक्ष यथासमय होता ही है, किंतु लौकिक वस्तुवोंकी प्राप्ति भी अनायास हो जाती है। अतः विपत्तिमें पडकर भी रागी द्वेषी देवतावोंकी आराधना नहीं करनी चाहिये।

उपासकाध्यायन. पृ. २७४—७५

इस प्रकरणको उध्दृत करनेका हमारा अभिप्राय यह है कि श्री पं. कैलासचंद्रजीके अभिप्रायसे भी उक्त शासनदेवता—वोंके सत्कारका समर्थन होता है, हमारे वाचक इस प्रकरणके निम्नलिखित विषयोंपर ध्यान देवे।

(१)आचार्यने सोमदेवने कहीं भी शासनदेवतावोंके सम्मान का निषेध नहीं किया है।

(२)इस प्रकरणमें भी जो लोग जिनेन्द्र भगवंतके समान मानकर उनकी पूजा करते हैं वे दोषी हैं, दुर्गतिको जाते हैं। ऐसा आचार्यने स्पष्ट किया है, यह हम पहिलेसे स्पष्ट कर आये हैं कि कोई भी शासनदेवतावोंको शासनदेवता समझकर जिनेन्द्रको जिनेन्द्र समझकर पूजा करते है, ऐसी स्थितिमें इसमें मिथ्यात्वका कोई दोष नहीं है।

(३)उन शासन देवतावोंको भी यज्ञांश (यज्ञभाग) प्रदान कर सम्मान करना चाहिये वह भी सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा, इस प्रकार आचार्यने स्पष्ट निर्देश किया है।

(४)सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा यज्ञभाग देकर सत्कार करना चाहिये इससे टीकाकारने जो कुछ भी लिखा है उनका सबका उत्तर हो ही जाता है, वे शासन भक्त हैं यह भी उन्हे स्वीकार हैं।

(५)पं. आशाधरजीने, बृहद्द्रव्य संग्रह वगैरे जो लिखा है कि वह सब इहलोकसंबंधी ख्याति लाभ पूजा वैभवादिकको

वांछासे पूजा करनेका निषेध है, शासनभक्त होने के कारण उनके सम्मानका इसमे निषेध नहीं है।

(६)प्रतिष्ठा आदि अवसरोंमें इनके सम्मानका विधान है ऐसी दबी अवाजसे जो बात करते हैं उन्हे यह भी समझना चाहिये कि नित्य पूजाके समय भी उनके सत्कारका विधान है, इसका प्रमाण भी भावसंग्रह का हम ऊपर दे चुके हैं।

(७)उस मंत्रके प्रभावसे नाग-नागनी धरणेंद्र पद्मावती हुए यह बात कोई २ निषेध करते हैं। टीकाकारको वह बात मान्य हैं यह आनंदका विषय है।

(८) ना समझ लोगोंकी हर क्षेत्रमें कमी नहीं है, कोई नासमझ लोग शासनदेवतावोंको तीर्थकरोंके समान माने या उन्हीको सब कुछ माने तो उनकी गलती हो सकती है, उनकी गलती के कारण शासनदेवतावोंके सत्कार का ही निषेध नही किया जा सकता है।

(९)सागारधर्मामृतके प्रकरणमें हम आगे स्वतंत्र लिखनेवाले हैं, अतः यहां उस संबंधका विवेचन नहीं करते हैं।

(१०)जिनेन्द्र भगवानके समान अष्ट द्रव्योंसे शासन देवतावोंका पूजा विधान जैनागममे नहीं है। शासन देवतावोंका सत्कार षोडशोपचारमे होती है। मंत्रविधिमें भी अंतर है।

(११) इन सब बातोंके प्रकाशमे आचार्य सोमदेवने भी शासन देवता पूजन (सत्कार) का समर्थन किया है यह समझमे आवेगा।

(१२)कोई कोई सज्जन "कल्पिताः परमागमे" इस पदको लेकर विवाद उत्पन्न करते हैं, अर्थात् परमागममें यह (खोटी) कल्पना की गई है, वास्तवमें ये शासन देवताये कोई चीज नहीं हैं, परन्तु पूर्वापर संबंधसे शब्दका अर्थ करना पडता है, उस प्रकार अर्थ करनेपर कोई विरोध नहीं आता।

(१३)कल्पना खोटी ही होती है ऐसा नियम नहीं है, शासनभक्तिके कारण देवेंद्रने इनमें शासनदेवता होनेकी योग्यता देखी, एवं शासनदेवतावोंके स्थानमें उनकी योग्यता देखकर ही नियुक्ति की, इस दृष्टिसे देवेंद्रकी कल्पनाके अनुसार इनकी व्यवस्था परमागममें मानी गई है, अतः वहांपर कल्पिताः पद अगर हों तो कोई हानि नहीं है।

(१४)उन शासन देवतावोंकी कल्पना सत्य है या असत्य है ? सादि है या अनादि है ? इन तर्कोंसे भी हम विचार करें तो सिद्ध होगा कि वह कल्पना सत्य है, और अनादि कल्पना है, किसी विवक्षित देवेन्द्रने या किसीने उनकी नये सिरसे कल्पना नहीं की है, सो स्पष्ट है।

(१५)प्रसंगमें कल्पना या कल्पिताः शब्दका अर्थ भी क्या होता है, इसका भी भी विचार करना चाहिये, कोपकारोंका मत यहांपर ग्राह्य है।

पद्मचन्द्र कोषः- में कल्पना का एक अर्थ रचना भी दिया गया है, अन्य अर्थ भी हैं।

हिंदीकोषः-अच्छी रचना, सजावट, नई शक्ति, उद्भावना मान लेना, अनुमान करना आदि अर्थ दिये गये हैं, इससे मान लेना जो अर्थ है वह मानिताःका रूपांतर है, कल्पिताः मानिताः यह समानार्थक दोनों पद हैं।

संस्कृतशब्दार्थकौस्तुभः- बनाना, करना, सजाना, रचना करना, विचार, रीतिभांति, इत्यादि अनेक अर्थ दिये गये है।

म्हैसोर यूनवर्सिटीके द्वारा प्रकाशित निघंटुमें कल्पना शब्दका अर्थ भावना भी दिया गया है।

इस प्रकार विचार करनेपर 'कल्पिताः' पदके अनेक अर्थ होते हैं, उनमेंसे प्रकरण गत मानिताः यह अर्थ ही उचित

प्रतीत होता है, आचार्य सोमदेवको भी वही इष्ट था।

(१६) अब रही कल्पिताः इस पदका उन्होने प्रयोग क्यों किया ? मानिताः इस पदका ही प्रयोग करते, उसमें कोई श्लोक भंग भी नहीं होता है।

इसका स्पष्ट उत्तर है कि ग्रन्थ निर्माण करते समय उन्हे जो पद सामने आया उसका वहांपर प्रयोग किया, शायद उस समय यह कल्पना नहीं की कि इस कल्पिता पदका लोग कुतर्क कर दुरुपयोग करेंगे। क्योंकि उस समय तो शासन देवतावोंको न माननेवालोंका अस्तित्व ही नहीं था। इसलिए विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं थी।

(१७) यदि तथोक्त अर्थ ही इष्ट होता तो आचार्यदेव आगामी श्लोकमें यह कभी नहीं कहते है कि—

'अतो यज्ञांशदानेन माननीया सुदृष्टिभिः'

यदि वह खोटी कल्पना है तो यज्ञांशदानसे सम्यग्दृष्टि उनका सम्मान क्यों करें, सम्यग्दृष्टि तो कल्पित नहीं है, वे तो वास्तविक हैं, उनका महत्व भी है। जो कल्पित, खोटे शासन देवोंका वह अकल्पित, निज व खरा सम्यग्दृष्टि सम्मान क्यों कर करेगा। इससे भी उन सज्जनोंका कथन असंबद्ध प्रतीत होता है।

इसलिए आचार्य सोमदेवके इस ग्रन्थसे भी शासन देवता सम्मानका समर्थन होता है।

इसी ग्रन्थके अंतर्गत देवपूजा व जिनाभिषेक प्रकरणको भी देखिये।

अभिषेकके समय प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना सन्निधा—पनके अनंतर पूजाका विधान है, सन्निधापनमें यह कल्पना करे कि यह जिनबिंब ही साक्षात् जिनेन्द्रदेव है, यह सिंहासन सुमेरु

पर्वत है, घटोमें भरा हुआ जल साक्षात् क्षीरसमुद्रका जल है, और आपके अभिषेकके लिए इन्द्रका रूप धारण करनेके कारण मैं साक्षात् इंद्र हूं, तब इस अभिषेक महोत्सवकी पूर्णता क्यों नहीं होगी ?

उपासकाध्ययन पृ. २३५

इससे आगेका श्लोक देखियेगा ।

योमेऽस्मिन्नाकनाथ ज्वलन पितृपते नैगमेय प्रचेतो ।
वायो रैदेश शेषोडुप सपरिजना यूयमेत्य ग्रहाग्राः ॥
मंत्रैर्भूः स्वः सुधाद्यै रधिगतबलयः स्वासु दिक्षूपविष्टाः ।
क्षेपीयः क्षेमदक्षाः कुरुत जिनसवोत्साहिनां विघ्नशांतिम् ॥

उपासकाध्ययन पृ. २३५ श्लो. ५३८

इस अभिषेक महोत्सवमें हे कुशलकर्ता, इंद्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, नाग और चन्द्र इसप्रकार दश प्रमुख ग्रह अपने परिवार जनोंके साथ आकर यहां उपस्थित होवे, एवं ओं भूर्भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, स्वधाय स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे बलि (यज्ञभाग) अर्पण करें एवं उन्हे अपनी अपनी दिशामें उपस्थित होकर शीघ्र ही जिन अभिषेकके लिए उत्साही पुरुषोंके विघ्नोंको शांत करनेके लिए कहे ॥४३८॥

इससे पूजाविधिमें इन दश दिक्पालकोंका आव्हान व उनको अर्घ्यप्रदान करना, सोमदेवके मतसे भी आवश्यक है, यह सिद्ध होता है ।

आचार्य सोमदेवने अपने पूर्ववर्ती आचार्य समंतभद्र, जटा-सिहनंदी, आ. गुणभद्र, देवसेन आदिका अनुकरण किया है, अतएव उनके ग्रन्थोंमें प्रामाणिकता है, स्वकपोल कल्पना उनके ग्रन्थोंमें नहीं पाई जाती है ।

एक बात प्रसंगमें उनकी ध्यान देने योग्य है ।

द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः ।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः ॥

उपासकाध्ययन ४७६

गृहस्थोंका धर्म दो प्रकारका होता है, एक लौकिक और पारलौकिक, इनमेंसे लौकिक धर्म लोक रीतिके अनुसार होता है, और पारलौकिक धर्म आगमके अनुसार होता है ॥४७६॥

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥

उपासकाध्ययन ४८०

जैन धर्मानुयायियोंको वह लौकिक व्यवहार सभी मान्य हैं, जिससे उनके सम्यक्त्वमें हानि नहीं होती हो, और न उनके व्रतोंमें दूषण लगता हो । ४८०

इससे ग्रन्थकारने यह अभिप्राय भी ध्वनित किया है कि जिन विषयोंका लोकाचारके रूपमें भी भी उन्होंने प्रतिपादन किया हैं, उनसे न सम्यक्त्वकी हानि होती है, और न व्रतोंमें दूषण लगता है, इत्यलम् ॥

—००—

प्रतिष्ठाकारको आशीर्वाद इस श्लोकसे प्रतिष्ठाचार्य देते हैं-

देव्योऽष्टौ च जयादिकाद्विगुणिताविद्यादिकादेवताः ।
श्रीतीर्थंकरमातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा ॥
द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा ।
दिक्पाला दश चेत्यमी सुरगणाः कुर्वंतु ते मंगलम् ॥

अर्थात् जयादिक आठ देवियां, विद्यादिक षोडश देवतायें तीर्थंकरोंकी मातायें, पिताजन, यक्षयक्षी ३२ देवेंद्र, तिथिदेवतायें और दिक्कन्यायें, दिक्पाल यह सब आपको मंगल करें, आपका कल्याण करें ।

त्रिलोकसार

यह आचार्य प्रवर नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ति द्वारा विरचित महान् सैद्धांतिक ग्रन्थ है, इसमें तीन लोकसंबंधी आवश्यक वर्णन आये है, नरतिर्यग्लोकाधिकारमें इस मध्यम लोकका वर्णन करते हुए आचार्य नंदीश्वर द्वीपका वर्णन करते हैं। उस प्रकरणको देखिये।

तव्बावण्णगगेसुवि बावण्णजिनालया हवंति तहिं।
सोहम्मादी बारसकप्पिवदा ससुरभवणतिया ॥९७३॥
त्रिलोकसार

अर्थ– तीन बावन पर्वत विषै ऊपरि बावन जिनमंदिर हैं, तिनविषैं अन्य कल्पवासी देव अरभवन भवनत्रिक देव तिनकरि-सहित सौधर्म आदि बारह स्वर्गनिके इंद्र हैं ॥९७३॥

पं. टोडरमल्लजीकृत टीका.

उन देवोंका वर्णन करते हुए लिखा है कि–
दिव्वफलपुप्फहत्था सत्थाभरणा सचामरणीया।
बहुधयतूरारावा गत्ता कुव्वंति कल्लाणं ॥९७५॥
त्रिलोकसार

अर्थ– दिव्यफल पुष्प पूजन आदि पूजन द्रव्य हस्त विषै-धारे हैं, बहुरि प्रशस्त आभरण पहरैं हैं, चामरिनि करिसहित सेनायुक्त हैं, बहुत ध्वजा अर वाजित्रनिके शब्दकरि संयुक्त हैं, ऐसे होत संते अपने स्थाननितैं तहां नंदीश्वर द्वीप विषैं जाइ ऐंद्रध्वज आदि जो जिनपूजनरूप कल्याण ताहि करैं है ॥९७५॥

पं. टोडरमल्लजी कृत टीका.

आगे पुनः देखिये–

पडिवरिसं आसाढे तह कत्तियफग्गुणे य अट्ठमिदो ।
पुण्णदिणोत्ति यभिक्खं दो दो पहरं तु ससुरेहिं ।।९७६।।
त्रिलोकसार

वर्ष वर्ष प्रति आषाढ मास विषैं अर तैसेही कार्तिक मास विषैं अर फाल्गुन मास विषै अष्टमी तिथितैं लगाय पूर्णिमा दिनपर्यंत अभीक्ष्ण कहिये निरंतर दोय दोय पहर अपने देवनि करिसहित (पूजा करते हैं) ।।९७६।।

पं. टोडरमल्लजी कृत टीका,

कैसी पूजा करते हैं ?

सोहम्मो ईसाणो चमरो वइरोयणो पदक्खिणदो ।
पुव्वावरदक्खिणुत्तरदिसासु कुव्वंति कल्लाणं ।।९७७।।
त्रिलोकसार

अर्थ– प्रथम स्वर्ग युगलके इन्द्र सौधर्म अर ईशान बहुरि असुर कुमारनिके इन्द्र चमर अर वैरोचन, ए च्यारयौ प्रदक्षिणा रूप पूर्व पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशानि विषैं कल्याण जो जिन पूजन ताहि करैं हैं । पूर्ववाला दक्षिण जाइ तब उत्तरवाला पूर्व को अवैं ऐसे प्रदक्षिणारूप महोत्सव युक्त पूजन करैं हैं ।।९७७।।

पं. टोडरमल्लजीकृत टीका.

इससे स्पष्ट है कि वे कल्पवासी देव और भवनत्रिकके देव भी जिनेन्द्र भक्ति करते हैं, नंदीश्वर पर्वमें अष्टम द्वीपमें पहुँच-कर निरंतर चतुर्दिशामें पूजन करते हैं, ऐसे देवोंका सम्यग्दृष्टि माननेमें नाना प्रकारके तर्क कुतर्क उठाये जाते हैं, परन्तु आग-मके प्रति अश्रद्धा व्यक्त करनेवाले ये महोदय सम्यग्दर्शनके

ठेकेदार बनते हैं। यह आश्चर्य नहीं क्या ? यह प्रकरण हमने इसलिए दिया है कि भवनत्रिकके एवं कल्पके देवोंमें भी किस प्रकार जिनेन्द्र भक्ति हैं इसका सिद्धांतसे स्पष्टीकरण हो जावेगा। अब वहां जिन प्रतिमायें कैसी होती है, इसका भी ग्रन्थकारने वर्णन किया हैं।

> दसतालमाणलक्खणभरिया पेक्खंत इव वदंता वा।
> पुरुजिणतुंगा पडिमा रयणमया अट्ठअहियसया ॥९८६॥

अर्थ-दश ताल प्रमाण लक्षणरि भरी हैं, तालका प्रमाण बारह अंगुल जाननां, बहुरि ते प्रतिमा तीर्थंकर वत् जानो कि चौघें हैं, जानो बोलें हैं। बहुरि पुरुजन जो पहिला वृषभ तीर्थंकर तीह समान पांचसै धनुष ऊंची हैं, बहुरि रत्नमय हैं ऐसी एकसौ आठ जिन प्रतिमा तिन गर्भग्रहनि विषै एक एक विराज मान हैं ॥९८६॥

पं. टोडरमलजी कृत टीका.

आगेकी गाथा और देखिये—

> चमरकरणागजक्खगबत्तीसंमिहुणगेहि पुह जुत्ता।
> सरिसीए पंतीए गब्भगिहे सुट्ठु सोहंति ॥
> सिरिदेवी सुवदेवी सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खाणं।
> रूवाणि य जिणपासे मंगलमट्ठविहमवि होदि ॥

त्रिलोकसार ९८७-९८८

अर्थ- बहुरि ते प्रतिमा कैसी है ? चमर है हाथ विषै जिनके ऐसे जु नागकुमारनिके वा यक्षनिके बत्तीस युगल तिनकरि संयुक्त जुदे जुदे एक एक गर्भ गृह विषै सदृश रूप बरोबरि पंक्तिकरि भले प्रकार सोभैं हैं।

भावार्थ– बत्तीस नागकुमार वा यक्षिनिके युगल तिनके हस्त विषें चौसठि चमर हैं, तिनकरि वीज्यमान हैं ॥९८७॥

तिन जिन प्रतिमानिके पार्श्व विषै श्रीदेवी अर सरस्वतीदेवी अर सर्वाण्ह यक्ष अर सनत्कुमार यक्ष इनके रूप जे आकार ते तिष्ठे हैं। भावार्थ जिन प्रतिमाके निकटि इन चारनिका प्रति-बिंब हो है, यहां प्रश्न जो श्री तो धनाधिक रूप है, अर सरस्वती जिनवानी है, इनका प्रतिबिंब कैसे हो हैं, ताका समाधान श्री अर सरस्वती दोऊ लोक विषै उत्कृष्ट है, तातै इनका देवांगनाका आकार रूप प्रतिबिंब हो है, बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त है, तातें तिनके आकार हो हैं, बहुरि आठ प्रकार मंगल द्रव्य जिन प्रतिमानिकें निकटि सोभैं हैं ॥९८८॥

पं. टोडरमल्लजी कृत टीका.

इससे विषय स्पष्ट हो जाता है, तीर्थंकर मूर्तिके पार्श्वमें यक्ष व श्रीदेवी, सरस्वती आदिकी मूर्ति रहती है, वह अकृत्रिम चैत्यालयोमें भी उसी प्रकारकी व्यवस्था हैं, इसलिए बहुतसे लोग यह आपत्ति करते हैं कि तीर्थंकरोंके पार्श्वमे यक्षयक्षीकी मूर्ति नहीं होनी चाहिये, उनका यह भी कहना है कि किसी भी ग्रन्थमें यक्षयक्षीसहित तीर्थंकर मूर्तिका निर्माण होना चाहिये, इस बातके लिए भी कोई आधार नहीं हैं, यह सब कथन निरा-धार हैं, मनगढंत है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तिने स्पष्टतया प्रतिपादन किया है कि नन्दीश्वरादि द्वीपोंमें भगवान्‌की प्रतिमायें किस प्रकार रहती है। जब भगवंतके पार्श्वमे उन शासन देवतावों स्थापित करना हो, उनकी मूर्तिको स्थापित करनी हो तो उसकी प्रतिष्ठा भी होनी चाहिये, यह प्रतिष्ठा शास्त्रोंसे संबंध रखती हैं, आगे इसपर विवेचन किया जायगा।

निसही पदका प्रयोग

हम लोग जिनमंदिरमें प्रवेश करते समय औं जब जब णिस्सही णिस्सही पदका प्रयोग करते हैं, उसका उद्देश क्या है इसपरभी प्रसंगोपात्त विचार किया जाता है।

मुनिजन भी अपने आवास गुफा आदिमें प्रवेश करते समय निस्सही शब्दका प्रयोग करते हैं। एवं निकलते समय असही शब्दका प्रयोग करते हैं, इसका भी तात्पर्य हैं. उसपरभी विचार करना चाहिये।

निसह्यसहीप्रयोगविधिमाह—

अर्थात् निसही, असही पदके प्रयोगकी विधि यहांपर कहते हैं।

वसत्यादौ विशेत् तत्स्थं भूतादि निसहीगिरा।
अपृच्छ्य तस्मान्निर्गच्छेत्तं चापृच्छ्याऽसहीगिरा॥

अन. धर्मा. अध्याय ८ श्लो. १३२

इसकी स्वोपज्ञ टीका भी देख लिजिये।

साधुर्विशेत् प्रविशेत्, क्व–वसत्यादौ–मठ चैत्यालयादौ, किं कृत्वा आपृच्छ्य-संबाद्य, कम् ? भूतादि–भूत यक्षनागादिकम्, किं विशिष्टम् तत्स्थं–तत्र वसत्या दौ तिष्ठन्तम्, कया–निसही-गिरा–निसहीकेत्युच्चारणेन, तथा साधुर्निर्गच्छेन्निष्क्रामेत्, कस्मात् ? तस्माद् वसत्यादेः किं कृत्वा ? आपृच्छ्य कम् ? तं तत्स्थं भूतादिकं कया ? असहीगिरा असहीकेत्युच्चारणेन, चः समुच्चये।

उक्तं च—

वसत्यादिस्थभूतादिमापृच्छ्य निसहीगिरा ।
वसत्यादेर्विनेतस्मात् निर्गच्छेत् सोऽसहीगिरा ॥
अनगार धर्मामृत

इसका सरल अर्थ है कि साधुजन वसति, जिन चैत्यालय आदिमें प्रवेश करते समय उस स्थानमें स्थित भूत नागादि देवोंको निसही शब्दका उच्चारण कर पूछें एवं तदनन्तर प्रवेश करें, इसीप्रकार वहांसे निकलते समय असही शब्दका उच्चारण कर उनसे पूछें व तदनन्तर वहांसे निकलें ।

इस प्रकरणसे यह सिद्ध होता है, मुनि निवास, जिनमंदिर आदि स्थानोमें शासन भक्त यक्ष यक्षी, नागकुमार आदि देव रहते है, उनको अनुमति लेकर ही अंदर प्रवेश साधुजन करते है, निकलते समय भी उनसे पूछकर निकलते हैं, अर्थात् साधु-जन भी शासन भक्तोंका आदर करते हैं, इसमें कोई दोष नही हैं ।

कोई यह कहकर उडा देंगे कि यह साधुवोंके कर्तव्यमें प्रति-पादित है, गृहस्थोंके लिए नहीं, यह भी उनका कथन विचार रहित है, क्योंकि जब साधुजनोंके लिए यह कर्तव्य बतलाया गया है, तो गृहस्थ तो उसे अवश्य पालन करते हैं, साधुवोंके सर्व आचारको गृहस्थ पालते हैं, ऐसा अर्थ नहीं हैं, तथापि सामान्य शिष्ट सम्मत व्यवहार हैं वह गृहस्थोंके लिए भी अनु-करणीय है, इसलिए गृहस्थोंकी नित्य क्रियामें भी ओं जयजय निस्सही निस्सही पदका प्रयोग है ।

समवसरणमें प्रवेश करते समय वहांके द्वार स्थित द्वार-पालोंकी अनुमति लेकरही देवेन्द्र और चक्रवर्ति सदृश महान-

शाली भी प्रवेश करते हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे द्वारपाल देव देवेंद्र व चक्रवर्तिके द्वारा पूज्य हैं, वे बडे हैं, प्रत्युत देवेन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने वहांपर उनकी नियुक्ति की हैं, फिर भी देवेन्द्र उनका समादर करता है, एक साधे सिपाईके कर्तव्यपालन का समादर मिनिस्टरको भी करना चाहिये, इस-का यह अर्थ नहीं है कि मिनिस्टर भी उस सिपाईकी पूजा करता है, शिष्ट संप्रदायका जो नियम है उसे पालनकर नियत व्यवस्थाका समादर करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है, वह पूजा नहीं है, समादर हैं, इसी प्रकार शासन देवताओंका समा-दर करना प्रत्येक श्रावकका कर्तव्य है।

उनकी अनुमति लेना ही उनका समादर है, महापंडित आशाधरजीने अपने विषयको समर्थन करनेके लिए उक्तं च कह-कर प्राचीन ग्रन्थका उद्धरण दिया है इससे स्पष्ट है कि पं. आशाधरजीके पहिलेके ग्रन्थकारोंने भी इस प्रकर निसही असही पदोंका प्रयोगकर इस विषयका प्रतिपादन किया है। अर्थात् यह प्रक्रिया बहुत प्राचीन और प्रामाणिक है।

इस प्रकरणसे हमें यह सिद्ध करना है कि जिनालयादिमें (सातिशय) यक्ष-भूत-नागादि देव सदा पूजादि करते हुए रहते है, मुनिजन या श्रावकजन उस स्थानमें प्रवेश करें तो आदर-पूर्वक उनकी अनुमति लेकर ही वहां प्रवेश करें एवं बाहर निक-लते हुए भी उनकी अनुमति लेके, यह उनके समादरका प्रकार है, अर्थात् वे सदा समादरणीय हैं।

भगवज्जिनसेनाचार्य कृत महापुराण

पर्व १८ में नमिविनमि कृत निवेदन वगैरे प्रकरणको देखिये।

जिनेन्द्र भगवंतके प्रति जिनके हृदयमें असीम भक्ति हैं, उनकी सहायता शासन देव भी करते हैं, नाना प्रकारसे उनका उपकार करते हैं। यह प्रसंगमे उपयोगी होनेसे यहांपर दिया जाता है।

भगवान् आदिप्रभु दीक्षा लेकर तपश्चर्या कर रहे हैं आत्म ध्यानमें लीन होकर जब आत्मसाधना कर रहे थे तब उनके चरणोंमें कच्छ महाकच्छ राजाके पुत्र नमिविनमिकुमार पहुंचते हैं, उन्होने भगवंतके चरणोमें बैठकर प्रार्थना की किः-

भोगेषु सतृषावेतौ प्रसीदेति कृतानती ।
पदद्वयेस्य संलग्नौ भेजतुर्ध्यानविघ्नताम् ॥९३॥

त्वयेश पुत्रनप्तृभ्यः संविभक्तमभूदिदं ।
साम्राज्यं विस्मृतावावामतो भोगान्प्रयच्छ नौ ॥९४॥

इत्येवमनुबध्नन्तौ युक्तायुक्तानभिज्ञकौ ।
तौ तदा जलपुष्पार्घ्यैरुपासामासतुर्विभुम् ॥९५॥

ततः स्वासनकंपेन तज्ज्ञासीत्फणीश्वरः ।
धरणेंद्र इति ख्यातिमुद्वहन्भावनामरः ॥९६॥

ज्ञात्वा चावधिबोधेन तत्सर्वं संविधानकम् ।
ससंभ्रममथोत्थाय सोंतिकं भर्तुरागमत् ॥९७।

ससपर्यः समुद्भिद्य भुवः प्राप्तः स तत्क्षणात् ।
समैक्षिष्ट मुनिं दूरान्महामेरुमिवोन्नतम् ॥९८॥

समिद्धया तपोदीप्त्या ज्वलद्भासुरविग्रहम् ।
निवातनिश्चलं दीपमिव योगे समाहितम् ॥९९॥

सादरं च समासाद्य पश्यन्भगवतो वपुः ।
विसिस्मिये तपोलक्ष्म्या परिरब्धमथोद्धया ॥१०५॥

परीत्य प्रणतौ भक्त्या स्तुत्वा च स जगद्गुरुं ।
कुमाराविति सोपायमवदत्संवृताकृतिः ॥१०६॥
आदिपुराण पर्व १८

अर्थात्-भोगोंमें आसक्तिको रखनेवाले उन नमि-विनमि-योने भगवंतसे प्रार्थना की भगवन् ! आप प्रसन्न होवे, यह कहते हुए उनके चरणोंमें पडे एवं उनके ध्यानमें विघ्न उपस्थित किया, स्वामिन् ! अपने अपने पुत्र, पौत्रोंको राज्यादिका विभाग कर दे दिया, परन्तु हमे मात्र आप भूल गये, अब हमें भोग्य द्रव्योंको प्रदान कीजिये, इस प्रकार भगवंतको विघ्न करते हुए उन राजकुमारोंने उन भोगोंकी इच्छासे ही भगवंतकी पूजा फल पुष्पाक्षतादिकसे की, इस प्रकार भगवंतके ध्यानमें उन्होंने विघ्न उपस्थित किया।

भगवंतकी तपश्चर्यामें इस प्रकारकी विघ्नवृत्तिके कारण भवनवासी देव नागेंद्र अथवा धरणेंद्रका आसन कम्पायमान हुआ, धरणेंद्रने अवधिज्ञानसे समस्त वृत्तांतको समझ लिया, तदनंतर शीघ्रही भगवंतके समीप आया, वह धरणेंद्र पूजा द्रव्योंको साथमें लेकर भूमिको भेदनकर जब आया दूरसे ही महामेरु पर्वतके समान उन्नत आदि प्रभुको देखा । भगवान् वर्धमान तपश्चर्याकी कांतिसे, वातरहित दीपक के समान निश्चल ध्यानमे मग्न थे, महाध्यान रूपी अग्निमें कर्मोंकी आहुति देनेवाले महायाज्ञिकके समान थे, ऐसे महाध्यानी योगींद्र के समीप पहुंचकर उनकी निश्चलताको देखकर धरणेंद्र विस्मित हुआ, तदनन्तर जगद्गुरुकी तीन प्रदक्षिणा देकर भक्तिके साथ नमस्कार एवं स्तोत्र किया, साथ ही अपनी आकृतीको बदल कर अन्य रूपको धारण किया। तदनंतर भगवंतके चरणोंमें याचनामें मग्न नमि-विनमिको उपायसे इसप्रकार कहा

युवां युवानौ दृश्येथे सायुधौ विकृताकृती ।
तपोवनं च वश्यामि प्रशांतमिदमूर्जितम् ॥१०७॥
क्वेदं तपोवनं शांतं क्व युवां भीषणाकृति ।
प्रकाशतमसोरेष संगमो नन्वसंगतः ॥१०८॥
अहो निघ्नतरा भोगा येरस्थानेपि योजयेत् ।
प्रार्थनामर्थिनां का वा युक्तायुक्तविचारणा ॥१०९॥
अवांछको युवां भोगान्देवोयं भोगनिस्पृहः ।
तद्वां शिलातले भोजवांछा विक्रीयतेद्य नः ॥११०॥
सस्पृहः स्वयमन्यांश्च सस्पृहानेव मन्यते ।
को नाम स्पृहयेद्धीमान्भोगान्पर्यंततापिनः ॥१११॥
आपातमात्ररम्याणां भोगानां वशगः पुमान् ।
महानर्थफलादोषात्सअत्नूगलघुर्भवेत् ॥११२॥
युवां चेद्भोग काम्यंतौ भजतं भरतांतिकम् ।
स हि साम्राज्यधौरेयो वर्तते नृपपुंगवः ॥११३॥
भगवान् त्यक्तरागादिसंगो देहेपि निस्पृहः ।
कुतो वामधुना दद्याद् भोगान्भोगस्पृहावतोः ॥११४॥
ततोलमुपरुध्यैनं देवं मुक्त्यर्थमद्भुतम् ।
भुक्तिकामौ युवां यातं भरतं पर्युपासितुम ॥११५॥

महापुराण १८ पर्व

कुमारो ! आप लोग युवक होते हुए आयुधपाणी भी हैं अतः विकार-आकारसे युक्त हैं, शांत वातावरण तपोवन कहां? भयकर आकारधारक तुम कहां ? यह प्रकाश व अंधकारके असंगत समागमके समान हैं, भोगाभिलाषी जन अयोग्य स्थानमें भी भोगकी अपेक्षा करते हैं यह अत्यंत निंद्य हैं, अहो ! याच-कोंको युक्तायुक्त विचार ही कहांसे आता हैं ? आप लोग भोगकी

आकांक्षा कर रहे हैं, यह प्रभु तो भोगोंसे अत्यन्त निस्पृह है, इसलिए पत्थरके ऊपर कमल पुष्पकी इच्छा करनेवालोंके समान यह आप लोगोंको कृति आश्चर्यकारक हैं, भोगोंको चाहनेवाले लोग दूसरोंको भी उसी प्रकार समझते हैं, अंतमें दुःखको उत्पन्न करनेवाले भोगको कौन बुद्धिमान् स्वीकार करेगा ? अनुभव कालमें रमणीय दिखनेवाले भोगोंके आधीन होंनेवाला पुरुष कितना ही बडा क्यों न हो, याचनाके दोषसे वह हलका हो जाता हैं। यदि आप लोगोंको भोगकी इच्छा हो तो भरतेश्वरके पास जावो, वह राजश्रेष्ठ होते हुए उन्होने राज्यकारभारको धारण किया हैं, रागादि परिग्रहोंका जिन्होंने त्याग किया है, वह भगवन् भोगकी आकांक्षा करनेवाले तुम्हे भोगोंको कहांसे दे सकते हैं ? इसलिए मुक्तिके लिए प्रयत्न करनेवाले भगवानको तुम तंग मत करो, भोगोंकी इच्छा करनेवाले तुम भरतेश्वरके पास जावो उनकी सेवा करो"। धरणेंद्रने कृत्रिम क्रोधके साथ कहा।

नमि-विनमि भी अपने स्वार्थमे सते हुए होनेके कारण बहुत क्रुद्ध हुए, उन्होने धरणेंद्रको निम्नप्रकार उत्तर दिया।

इति तद्वचनस्यांते कुमारौ प्रत्यवोचताम्।
परकार्येषु वः कास्था तूष्णीं यात महाधियः ॥११६॥
युक्तं युक्तमन्यद्वा जानीमस्तद्द्वयं वयम् ।
अनभिज्ञा भवंतोत्र साधयंतु यथेहितम् ॥११७॥

. . . .

अपृष्टः कार्यमाचष्टे यः स धृष्टतरो मतः।
न पिपृच्छिषिता यूयमावाभ्यां कार्यमीदृशं ॥१२१॥

. . . .

परेषां बुद्धिमालोक्य नन्वसूयन्ति दुर्जनः ।
युष्मादृशां तु महतां सतां प्रत्युत सा मुदे ॥१२६॥

. . . .

वनेपि वसतो भर्तुः प्रभुत्वं किं परिच्युतम् ।
पादमूले जयद्विश्वं यस्याद्यापि चराचरम् ॥१३२॥

. . . .

भरतस्य गुरोश्चापि किम् नाम्त्यंतरं महत् ।
गोष्पदस्य समुद्रेण समकक्ष्यमस्ति वा ॥१३३॥

. . . .

कुमारोंने कहा कि बहुत बुद्धिमान् समझनेवाले महाभाग ! आपको दूसरोंके कार्यसे क्या प्रयोजन ? आप इस कार्यके बीचमें व्यर्थ क्यों पडते हैं ? चुपचापके आप यहांसे चले जाय. इस सबंधमें युक्त क्या है, अयुक्त क्या है ? दोनों हम जानते हैं, आपको हमारा उद्देश मालुम नहीं है, अपना काम करो, दूस-रोंके बीचमे क्यों पडते हो, वृद्ध और युवकोंका भेद वयके कार-णसे होता है, वृद्ध होनेके कारण बहुत बुद्धिमान् नहीं हो सकते हैं, प्रत्युत उस वृद्धावस्थामें बुद्धि शक्ति आदिकी क्षीणता होती है, पुण्यशालियोंको प्रथम वयमें भी अच्छी बुद्धि आती है, युवावस्था दोषदायक नहीं है, वृद्धावस्था कोई गुणदायक नही है, विना पूछे सलाह देना यह धृष्टता है, आपसे कोई कार्यकी अपेक्षा हमने नहीं की हैं, विना पूछे उत्तर देनेवाले दुष्टजीव अपने उपदेशपूर्ण शिष्ट वचनोंसे दुनियाको धोका देते है, बुद्धि-मान् कभी असत्य वचन नहीं बोलते हैं, उनकी कृति व विचार भी दूसरोंकी हानिके लिए नहीं हुआ करते । आपको देखनेपर आप बुद्धिमान् मालूम होते हैं, परन्तु कृति ऐसी नहीं है, भरतके पास जानेकी सलाह दे रहे हो, कहां प्रभु और कहां भरत ?

गोष्पद जल और समुद्रका जल समान हो सकता है क्या ? मानीजन श्रेष्ठ स्थानको पाकर ही श्रेष्ठ वस्तुकी अपेक्षा करते हैं, इसमें कोई हानि नहीं हैं।

इस प्रकार उन कुमारोंकी भक्तिको देखकर धरणेन्द्र मन मनमें बहुत प्रसन्न हुआ, सोचने लगा कि इन युवकोंको इच्छा, गांभीर्ययुक्त प्रभुको भक्ति एवं प्रबल आकांक्षा श्लाघ्य ही नहीं आश्चर्यंकर भी है, धरणेन्द्रने अपने दिव्य रूपको प्रकट कर उनको निम्नलिखित वचनोंसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया।

युवां युवजरंतौ स्थस्तुष्टो वां धीरचेष्टितैः।
अहं हि धरणो नाम फणिनां पतिरग्रिमः ॥१३९॥
मां विरां किंकरं भर्तुः पातालस्वर्गवासिनं।
युवयोर्भोगभागित्वं विधातुं समुपागतम् ॥१४०॥
आदिष्टोस्म्यहमीशेन कुमारौ भक्तिकाविमौ।
भोगैरिष्टैर्नियुंक्ष्वेति द्रुतं तेनागतोस्म्यहम् ॥१४१॥
तदुत्तिष्ठत मापृच्छ्य भगवंतं जगत्सृजं।
युवयोर्भोगमद्याहं दास्यामि गुरुदेशितम् ॥१४२॥

महापुराण पर्व १८

हे कुमारो! आप लोगसे युवक होनेपरभी आचरणसे वृद्ध प्रतीत होते हैं, आप लोगोंके धैर्यपूर्ण वृत्तिसे मैं बहुत प्रसन्न हो गया हूं, मैं नागदेवतावोंका अधिपति धरणेन्द्र हूं, पाताल स्वर्गमें निवास करनेवाले मुझे स्वामीका सेवक समझें, आप लोगोंको भोग वस्तु प्रदान करनेके लिए यहां आया हूं, भक्तिमान् इन कुमारोंको इष्ट भोगोंको प्रदान करो, ऐसी स्वामीको आज्ञा हुई है, इसलिए शीघ्र यहां आया हूं, इसलिए अब शीघ्र

ऊपर उठिये, स्वामीकी आज्ञानुसार अब आप लोगोंको भोग पदार्थोंको देता हूं।

इस प्रकारके वचनको सुनकर वे दोनों कुमार बहुत प्रसन्न हुए, धरणेन्द्रसे कहने लगे कि वास्तवमे प्रभु हमसे प्रसन्न होकर इष्ट भोगोंको प्रदान करनेवाले हैं, यदि यह बात सत्य होतो कहो, अन्यथा प्रभुकी इच्छा न होत ? हम उन भोगोंको लेने के लिए तयार नहीं, हमें उनकी आवश्यकता नहीं हैं।

इस प्रकार उपायसे उन दोनों कुमारोंको विमानमें बैठाल कर आकाश प्रदेशसे विजयार्ध पर्वतकी ओर ले गया, विजयार्ध पर्वतकी ओर जाते समय बीचके वनप्रदेश, मेरु पर्वतकी आदि का उसने वर्णन किया, विजयार्ध पर्वतका भी विस्तारके साथ वर्णन किया, विजयार्ध पर्वतके ऊपर आनेके बाद वहांपर स्थित विद्याधर लोगोंका भी वर्णन किया, विद्या सिद्ध करनेका क्रम, विधि व फलका भी वर्णन किया, विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण व उत्तर श्रेणीके प्रदेशोंका भी विवेचन किया. वहांके उद्यानवन आदिकी शोभाका भी वर्णन किया, तदनन्तर वहां ले आकर दक्षिण श्रेणीका अधिपति नमिको और उत्तर श्रेणीका अधि-विनमिको बनाया वहांकी प्रजावोंने भी धरणेन्द्रकी आज्ञाको तथास्तु कहकर स्वीकृत किया, नमि विनमि भी बहुत संतुष्ट हुए, चिरकालतक वहां राज्य किया।

इस प्रकरणमें खास ध्यान देने योग्य विषय यह है कि प्रभुके चरणोंमें सत्याग्रह करनेवाले नमि विनमिकुमारकी सूचना आसन कंपसे धरणेन्द्रको क्यों मिली ? वह प्रभुका अनन्य भक्त सम्यग्दृष्टि जीव था, दूसरी बात उस धरणेन्द्रने अवधिज्ञानसे सर्व वृतांत जान लिया,अवधिज्ञान तो सम्यक्त्वके

साथ होता है, अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीवोंको ही अवधिज्ञान होता है, मिथ्यादृष्टियोंको विभंगज्ञान होता है, अवधिज्ञान नहीं, विभंग ज्ञानसे यह प्रशस्त दृश्यका ज्ञान भी नहीं हो सकता है, इससे शासन भक्त देव तीर्थंकरोंके प्रति कितनी भक्ति रखते हैं यह भी स्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकरणके अन्तिम श्लोकपर हम पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं, कृपया सूक्ष्मदृष्टिसे अवलोकन करें।

गांधारपन्नग पदोपपदे च विद्ये।
दत्वा फणावदधिपो विधिवत्स ताभ्याम्॥
धीरो विसर्ज्य नयविन्नतौ कुमारौ॥
स्वावासमेवच जगाम कृतेष्टकार्यः॥१८५॥

पूर्वपुराण १९ पर्व

अर्थः- नीतिके जानकार एवं धीर उस धरणेन्द्रने उन दोनों कुमारोंको मूलमंत्रसहित गांधार विद्या व पन्नग विद्याको यथाविधि प्रदान किया, दोनों कुमारोंने धरणेन्द्रको विनयपूर्वक नमस्कार किया, पश्चात् धरणेन्द्र इष्ट कार्यकी समाप्तिके बाद अपने आवास स्थानको चला गया॥१८॥

यहांपर ग्रन्थकारने धरणेन्द्रको नीतिको जाननेवाला विशेषण दिया है, उन्होने नमि विनमिको यथाविधि (विधिवत्) विद्या प्रदान की, अर्थात् उन विद्या मंत्रोंको ग्रहण करते समय गुरु शिष्य भाव जो होना चाहिये उसका आचार वहां पालन किया गया, विद्या प्रदान करनेके बाद नमिविनमिने धरणेन्द्रको नमस्कार किया, नमस्कार विनयके बिना नहीं हो सकता है, वनय रहित यदि नमस्कार किया जाता है, तो वह नमस्कार निहीं है, ढोंग हैं। परंतु तद्भव मोक्षगामी, जिनेन्द्रभक्त

सम्यग्दृष्टि नमिविनमि क्षोभ क्यों करने लगे, उन्होंने धरणेन्द्रको परमोपकारी समझकर ही उसे नमस्कार किया, अतः सम्यग्दृष्टि जीव भी धरणेन्द्रादिक शासन भक्तोंका समादार करता है, यह इस प्रकरणसे भली भांति सिद्ध होता है ।

बृहद्द्रव्य संग्रहमें देवमूढता—

शासन देवता सत्कारका निषेध करनेवाले लोग विशेषतः बृहद्द्रव्य संग्रहमें प्रदत्त देवमूढता का वर्णन है उसे सामने लाते हैं, हालां कि उसमें शासन देवता सत्कारके निषेधका एक भी अक्षर नहीं हैं, उसमें वरकी अभिलाषासे किंवा ख्यातिलाभ पूजा की इच्छा से मिथ्यादेवोंके सत्कारका निषेध किया गया है।

हम उन पंक्तियोंको यहां उध्दृत करते हैं ।

'ख्यातिपूजालाभरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रराज्यादि-विभूतिनिमित्तं रागद्वेषोपहर्तातंरौद्रपरिणत क्षेत्रपालचंडिकादि-मिथ्यादेवानां यदाराधनं करोति जीव सद्देवतामूढत्वं भण्यते" ।।

बृहद्द्रव्यसंग्रह पृ. १५०

इस कथनसे शासन देवतावोंके सत्कारका निषेध नहीं होता हैं, शासन देवता मिथ्यादेवता नहीं हैं, ख्यातिलाभ पूजा, पुत्र कलत्र प्राप्ति, सौभाग्य संपत्ति लाभादिकी भावनासे लोक प्रसिद्ध आर्तरौद्र आदि कुभावनाओंसे परिणत मिथ्यादेवोंकी यदि आराधना की जाती है वह लोक मूढता है ।

शासन देवता मिथ्यादेवता क्यों नहीं है ? इस पर भी हम प्रमाण उपस्थित करते हैं ।

आचार्य सकलकीर्तिने अपने धर्म प्रश्नोत्तर नाम ग्रन्थमें इसका स्पष्टीकरण किया है वह इस प्रकार है ।

देवाः कति प्रकाराः स्युर्देवदेवाः जगन्नुताः ।
सुदेवाश्च कुदेवाश्चा–देवाश्चतुर्विधा इमे ।।४३।।
देवदेवा महांतके ये तीर्थेशा जगद्धिताः ।
धर्मतीर्थंकरा विश्वज्येष्ठा देवाधिपाश्च ते ।।४४।।
के सुदेवा दृगाढ्याये चतुर्णिकाय निर्जराः ।
जिनभक्ताः सुदेवास्ते शक्राद्या देवजातिषु ।।४५।।
कुदेवाः केत्र ये देव–गतौ दर्शनवर्जिताः ।
चतुर्णिकाया मध्ये ते कुदेवा भववर्द्धकाः ।।४६।।
अदेवाः केत्र ये धूर्तैः स्थापिताः परवंचकैः ।
वंचनायाज्ञलोकानां भवाब्धिभ्रमिणो खिलाः ।।४७।।
चंडिका हरहर्याद्या विनायकादयोयुताः ।
स्त्रीभूषणायुधाद्यैस्ते स्युश्चादेवाः सुरातिगाः ।।४८।
धर्म प्रश्नोत्तर अध्याय ३

देव कितने प्रकारके होते हैं ? इसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि देवदेव, सुदेव, कुदेव एवं अदेव इस प्रकार देवोंके चार प्रकारके भेद हैं ।

(१) जगत्के द्वारा वंद्य, पूज्य, जगत्का हित करनेवाले धर्मप्रवर्तक तीर्थंकर, लोकमें सर्व श्रेष्ठ एवं विश्वज्येष्ठ देवाधिदेव, देवदेव कहलाते हैं जिनकी वन्दना पूजा सभी करते हैं ।

(२) चतुर्निकाय देवोंमें जो सम्यग्दृष्टि होते हुए जिनेन्द्र व शासनके भक्त है वे देवेंद्रादिक एवं शासन देव सुदेव कहलाते हैं ।

(३) कुदेव कौन हैं ? देवगतिमें उत्पन्न होकर भी जो सम्यग्दर्शनसे रहित हैं, वे कुदेव कहलाते हैं, वे संसारको बढाने-वाले होते हैं ।

(४) अदेव कौन हैं? जो दूसरोंको ठगनेके लिए धूर्तोंके द्वारा स्थापित किये गये हैं वे अदेव हैं, अज्ञानी लोगोंको ठगनेके काम करनेवाले ये सभी संसार समुद्रमें ही पतित होते हैं।

चन्डिका, हरिहर, विनायक, स्त्री भूषण आयुधादिसे युक्त सभी देव अदेव कहलाते हैं।

इससे विषय स्पष्ट हो जाता है; बृहद्द्रव्य संग्रहकारने जिन मिथ्या देवतावों (चण्डिकादि) का उल्लेख किया हैं, वे अदेव या कुदेवकी कोटीके हैं, सुदेव की श्रेणीमें उनकी गणना नहीं होती हैं, परन्तु यहांपर ग्रन्थकार सम्यग्दर्शनसहित शासनभक्त या जिनेन्द्रभक्त देवोंको सुदेवमें गणना करते हैं। वे जिनभक्त हैं, इन्द्रादियोंका इसमें खासकर ग्रहण किया है।

इसमें एक कारण यह भी है देवेन्द्रादि कई देवोंके लिए सम्यग्दृष्टि होनेके कारण दूसरे भवसे ही मुक्तिकी पात्रता उन्हे प्राप्त हो गई है, इस संबंधमें सिद्धांतकार कहते हैं कि:—

सोहम्मो वरदेवी सलोगवाला य दक्खिणमरिंदा।
लोयंतिय सव्वट्ठा तदो चुदा णिव्वुदिं जंति ॥५४८॥
त्रिलोकसार-वैमानिकलोकाधिकार

अर्थात् सौधर्म नामक इन्द्र, उसकी पत्नी शची महादेवी, उसके सोम आदि चार लोकपाल, सानत्कुमार आदिक दक्षिण इन्द्र, सर्व लोकांतिक देव, सर्वार्थसिद्धिके देव, ये सभी उक्त पर्यायसे च्युत होकर मनुष्य पर्यायको पाते हैं, एवं वहांसे निर्वाणको प्राप्त करते हैं, उपर्युक्त सभी देव एक भवावतारी है।

इस प्रकार जिनदेवोंके संसारका अंत आ चुका है; सम्यग्दृष्टि हैं, जिनशासनके भक्त है, ऐसे देवोंका आदर करनेमें नाना प्रकारसे वहाना बाजी करें, सम्यग्दर्शन मलिन होनेका भय बतावे तो क्या फिर आगमकी अश्रद्धा करनेवाले शासन

भक्तोंको मिथ्यादृष्टि बतानेवाले इन (?) का समादर करें? जरा विवेकी जन गंभीरतासे विचार करें!

शुभचंद्राचार्यकृत—सप्तपरमस्थान पूजा

सप्तपरमस्थान नामक व्रत है, सज्जातित्व, सद्गृहस्थत्व, पारिव्राज्य, सुरेंद्रता, साम्राज्य, आर्हंत्य पद, एवं निर्वाण इस प्रकार लोकमें सात सर्वोच्च स्थान हैं, इनको जो प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त करता हैं वह सातिशय योगी है, सुरेंद्रता एवं साम्राज्य सबको प्राप्त हों या न हों बाकीके परमस्थानोंको प्राप्त करके ही मोक्षलाभ करना पडता है।

सप्तपरम स्थानकी प्राप्तिके लिए सप्तपरम स्थान नामक व्रत करना होता हैं, इसमें अलग अलग सात उपवास करने होते है, व्रतमें उपवासका अनुष्ठानकर सप्तपरम स्थानोंकी पूजा की जाती है, इतर परमस्थानोंकी पूजाके साथ सुरेंद्रता नामक परम स्थानकी पूजा आचार्यने इस प्रकार करनेका विधान बताया है।

महर्द्धिगुणसम्पूर्णं सुरकोटिसमन्वितं।
सुरेन्द्रपदमित्याहुः संयजे चाष्टधार्चनैः॥

अर्थात् महान् ऋद्धि और महान् गुणोंसे युक्त करोडो देव परिवारके साथ रहनेवाले स्थानको सुरेन्द्र पद कहते हैं, ऐसे सुरेन्द्र पदकी पूजा मैं अष्टद्रव्योंसे करता हूं।

यहां अज्ञ लोग कहेंगे कि सुरेन्द्रपदकी भी पूजा कराई गई, आचार्य कहते हैं कि मोक्षसिद्धि के लिए सुरेन्द्र पदकी प्राप्ति भी आवश्यक है, उसकी भी पूजा इस व्रतमें करनी चाहिये, जिससे सप्तपरमस्थानोंकी प्राप्ति होवे।

—oooo—

पांडवपुराण:—शुभचंद्राचार्य विरचित.

रातकी समाप्ति होनेपर धनंजयके दूतने किसीसे पूछा कि जयाद्रंका रथ कैसे पहचाना जायगा ? तब उसने कहा कि राजावोंने एक बडा व्यूह रचा है, उस विषम व्यूहमें कोई देव भी प्रवेश नहीं कर सकता है, उस वृत्तको सुनकर अर्जुनने कहा कि यदि उस व्यूहकी रक्षा देव भी करेंगे तो भी मैं जयाद्रंको जयकी इच्छासे मारूंगा, ऐसा कहकर वेदीमें बडा दर्भासन बिछाकर वह बैठ गया ॥६८–८१॥

पांडवपुराण पर्व २०

आगेका प्रकरण देखिये:—

स्थितस्तत्र स धैर्येण दध्यौ शासनदेवताम् ।
आराधितो मया धर्मो जिनदेवः सुसेवितः ॥८२॥
गुरुश्च यदि प्राकट्यं भज शासनदेवते ।
इति ध्यायञ्जिनं चित्ते स्थितोऽसौ स्थिरमानसः ॥८३॥
समायासीत्तदा पार्श्वं परशासनदेवता ।
अजल्पेति हरिं पार्थं सा सुरी सुखकारिणी । ॥८४॥
नरनारायणौ यत्र श्रीनेमिश्च महामनाः ।
तत्राहं प्रेष्यकारित्वं भजामि भवतामिह ॥८५॥
युवां च यच्छतां तूर्णं ममादेशं मनोगतम् ।
अवोचतां तदा तौ तं श्रेष्ठं वैरिवधोद्भवं ॥८६॥
तच्छ्रुत्वाह सुरीतीत्रमागच्छन्तं मया समम् ।
युवां सेत्स्यंति कार्याणि भवतोर्विपुलानि च ॥८७॥
तदा समं जगामाशु पार्थस्तेन सुमानसः ।
ग्रन्न सौख्या करी रम्या कुबेरस्नानवापिका ॥८८॥

हेमपद्मसमाकीर्णा हंससारससश्रवा ।
मणिसोपान संरुद्धा चलत्कल्लोलमालिका ॥८९॥
देवीवचनेन पार्थेशमेतस्य विपुले जले ।
वसतः फणिनौ भीमौ फणाफुत्कारकारिणौ ॥९०॥
भित्त्वा भयं नरेन्द्राद्य वापिकां प्रविश त्वरा ।
गृहाण नागयुगलं संकल्पमिव विद्विषः ॥९१॥
निशम्य निपुणः पार्थः प्रविश्य वरवापिकाम् ।
जग्राह भुजगद्वन्द्वं सर्वद्वन्द्वनिवारकम् ॥९२॥
एको यातु शरत्वं ते द्वितीयस्तु शरासनं ।
नरनारायणौ तुष्टौ तच्छ्रुत्वा सशरासनौ । ॥९३॥

पांडवपुराण पर्व २०

वेदिकाके ऊपर धैर्यसे बैठकर अर्जुनने शासन देवताका स्मरण किया, मैंने यदि जिनधर्मकी आराधना की हो जिनेश्वर की यदि सेवाकी हो और गुरुकी सेवा की हो तो हे शासनदेवते! तुम प्रकट हो जावो! इस प्रकार जिनेश्वरको चित्तमें ध्याता हुआ अर्जुन स्थिर चित्त होकर बैठा, उस समय उत्तम शासनदेवता अर्जुनके पास आ गई, और सुख देनेवाली वह देवता कृष्ण और अर्जुनसे वार्तालाप करने लगी, हे अर्जुन! श्रीकृष्ण और महामना नेमिप्रभु जहां हैं वहां उस वंशमें मैं आपकी सेवा करनेके लिए तयार हूं, अर्थात् आपकी आज्ञा पालन करनेके लिए प्रस्तुत हूं, आप अपने मनोगत इच्छाको व्यक्त कीजिये, तब उन्होंने वैरिवधके कार्यको प्रस्तुत किया, उसे सुनकर देवीने कहा कि 'मेरे साथ आप दोनों चलिये, आपके समस्त कार्य सिद्ध होंगे, तब वह अर्जुन उसके साथ कुबेरवापिकाके पास गया, वह सरोवर सुवर्ण कमलोंसे युक्त, हंस व सारस पक्षियोंके कलकलसे शोभित एवं रत्नमय सोपानोंसे अलंकृत था.

देवता अर्जुनसे कहने लगी कि इस वापिकाके अगाध जलमें फणाओंसे फूत्कार करनेवाले महाभयंकर दो सर्प विद्यमान हैं, राजन्! आप भयका त्यागकर शीघ्र इस सरोवरमें प्रवेश करो और शत्रुवोंके शल्यके रूपस्थित उन नागोंको ग्रहण करो।

देवताके वचनको सुनकर अर्जुनने उस सरोवरमें प्रवेश किया, एवं सर्व संघर्षको दूर करनेवाले उन सर्पोंको पकड लिया उनमेंसे एक शर बनेगा, और दूसरा धनुष बनेगा, इसे सुन-कर नर नारायण दोनों ही प्रसन्न हुए।

इससे शासन देवतावोंका अस्तित्व व उनके कार्यका ज्ञान अच्छीतरह हो जाता है।

कोई कहेंगे कि अर्जुनने जिनेन्द्र भगवंतका भक्तिसे ध्यान किया, तब वह शासन देवता आ गई, सो इसमें शासन देवताके सत्कारका क्या संबंध है? परन्तु ध्यान देनेकी बात यह है कि अर्जुनने जिनेन्द्र भगवंतका ध्यान करते हुए भी शासन देवताको ही आव्हान किया, जिनेन्द्र भगवंतसे याचना नहीं की, कि मेरा अमुक कार्य है भगवन्! आप सिद्ध करें। अर्जुन सदृश मोक्ष-गामी जीव यह अच्छी तरह जानता था कि जिनेन्द्र भगवंत कुछ लेने—देनेवाले नहीं है, वे वीतरागी हैं, परन्तु शासनदेवता हमारी इष्ट सिद्ध कर सकती हैं, सो शासन देवतासे ही उन्होने कहा कि हमारा कार्य करो।

इससे यह भी सिद्ध होती हैं कि शासन जिनेन्द्रभक्तोंकी अभिलाषाकी पूर्ति करती है, हालां कि उस भक्तका दैव अनुकूल होना ही चाहिये। दैवकी अनुकूलता होनेसे वह शासनदेवता उस कार्यकी पूर्तिमें निमित्त बन जाती हैं।

तीसरी बात जिनेन्द्र भक्त यदि शासन देवतासे कुछ कामना करता है, तो भी उसकी पूर्ति शासनदेवता करती है,

यद्यपि प्रतिफलकी अभिलाषा करना सम्यग्दर्शनके म्लान हेतु हैं, तथापि उस कारणसे सम्यग्दर्शनसे पतित नहीं हो सकता है।

सागारधर्मामृत अध्याय ३ रा श्लोक ७-८

दर्शनिक श्रावकका लक्षण कहते हुए पं. आशाधरजीने यहांपर दो श्लोकोंका कथन किया हैं।

> पाक्षिकाचारसंस्कार-दृढीकृतविशुद्धदृक् ।
> भवाङ्गभोगनिर्विण्णः परमेष्ठिपदैकधीः ॥७॥
> निर्मूलयन्मलान्मूलगुणेष्वग्रगुणोत्सुकः ।
> न्याय्यां वृत्तिं तनुस्थित्यै तत्वन् दर्शनिको ॥८॥

इसका सरल अर्थ यह हैं कि पाक्षिकके आचारोंके संस्कारसे जिन्होने अपने विशुद्ध सम्यग्दर्शनको सदृढ किया है, संसारके भोगोंसे अत्यासक्ति नहीं रखता है, अर्हंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय व सर्व साधुवोंके चरणोंमें एकनिष्ठ चित्तको रखनेवाला हैं, सम्यग्दर्शनके संपूर्ण दोषोंको दूर करता हुआ, अष्टमूल गुणोंको भी निरतिचार पालन करता है, शरीरके स्थिति के लिए जों न्यायपूर्ण आजीविकाको वृत्तिको धारण करता है, वह दर्शनिक कहलाता है ॥७-८॥

इन दो श्लोकोंमें परमेष्ठिपदैकधीः जो पद आया हैं उसका अर्थ करते हुए ग्रन्थकर्ताने स्वयं लिखा है कि पंचपरमेष्ठियोंको चरणोंमें एकनिष्ठ भक्ति रखनेवाला दर्शनिक प्रतिमाधारी-

आपदाकुलितोपि दर्शनिकस्तन्निवृत्यर्थं शासनदेवतादीन् कदाचिदपि न भजते, पाक्षिकस्तु भजत्यपि इत्येवमर्थमेक-ग्रहणम् ।

अर्थात् आपत्तिसे आकुलित होनेपरभी उस आपत्तिको निवृत्तिके लिए दर्शनिक प्रतिमाधारो शासन देवताओंकी पूजा

नहीं करता है, यहांपर भजते पद है, भज यजने अथवा पूजन इस अर्थमें प्रयुक्त होता हैं, पूजन करनेमें पूज्यभाव होता है, इस दर्शनिक उन शासन देवतावोंको पूज्य समझकर पूजा नहीं करता हैं, पाक्षिक तो करता है। अर्थात् पाक्षिकके लिए शासन देवता पूजा आशाधरजीको दृष्टिमें निषिद्ध नहीं है, ग्रन्थकारके अभिप्रायको पूर्वापर कथन संबंधको जोडकर देखना चाहिये।

श्रावकेणापि पितरौ गुरूराजाप्यसंयताः।
कुलिगिनः कुदेवाश्च न वंद्याः सोपि संयतैः ॥
अनगारधर्मामृत अ. ८ श्लो ५२

अर्थात् संयत श्रावकोंको असंयत माता पिता, गुरु, राजा, कुलिगी कुदेवोंकी वन्दना नहीं करनी चाहिये, वंदना करना हाथ जोडकर मस्तक झुकाकर होता है, उसमें भी स्तुति पूजा आदि होनेसे पूज्यताका भाव आ जाता है, इसलिए असंयतों की वन्दना नहीं करनी चाहिये यह स्पष्ट बात है। इसके अर्थमें आशाधरजी स्पष्ट लिखते है कि कुलिगिनः तापसादयः पार्श्व-स्थादयश्च, कुदेवाः रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च. अर्थात् कुलिगी तपस्वी, रुद्रादि कुदेव, शासन देवतादिको संयत श्रावक वन्दना न करें, अर्थात् जिनेन्द्रके समान पूज्य मानकर उन देवतावोंको वन्दना करना उचित नहीं है, यह अभिप्राय यहांपर ग्रन्थकारको अभीष्ट हैं, अन्यथा उन्होने इसी प्रकरणमें लोकानुवर्ति विष-यका जो निरूपण किया है उसका क्या अर्थ होगा ? उनका कहना हैं कि—

लोकानुवृत्तिकामार्थभयनिश्रेयसाश्रयः।
विनयः पंचआवश्यकार्योन्त्यो निर्जरार्थिभिः ॥
अनगारधर्मामृत अः ८ श्लो ४७

अर्थात् विनय पांच प्रकारसे विभक्त है। लोकानुवृत्ति, काम, अर्थ, भय, एवं निश्रेयस इसप्रकार पांच विनय है। लोकानुवृत्ति, काम अर्थ, भय ये लौकिक विनय हैं, लौकिक अर्थादिकी इच्छासे की जाती हैं, परन्तु अन्तिम मोक्ष विनय तो कर्म निर्जराके लिए कारण है, इसलिए कर्म निर्जराकी इच्छा रखनेवाले श्रावकोंको अन्तिम विनय तो अवश्य करनी चाहिये, साथ ही व्यवहार मार्गमे लोकानुवृत्ति आदि विषयोंका भी अनुष्ठान करना चाहिये।

यह व्यवहार है, शिष्टाचार है, यदि लौकिक व्यवहारमें रहना हो तो श्रावकको लोकमान्य व्यवहारका पालन करनाही चाहिये।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शासन देवतावोंको पूज्य मानकर अपनी लौकिक आपत्ति आदिको दूर करनेकी दृष्टिसे उपासना नहीं करनी चाहिये, अपितु शासनभक्त समझकर उनका आदर सत्कार करनेमें कोई हानि नहीं है, और न उसका सम्यक्त्व मलिन होता है, यह अर्थ पं. आशाधरजीको मान्य था, इसीलिए उन्होने स्वरचित प्रतिष्ठा पाठ ग्रन्थमें जगह जगहपर शासन देवतावोंकि सत्कारका प्रतिपादन किया है, जिसे हम उस प्रकरणमे उध्दृत करेंगे।

श्री रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण पर्व ६७

सर्वत्र भरतक्षेत्रे सुविस्तीर्णे महामते।
अर्हच्चैत्यैरियं पुण्यैर्वसुधासीदलंकृता ॥१०॥
राष्ट्राधिपतिभिर्भूपैः श्रेष्ठिभिर्ग्रामभोगिभिः।
उत्थापितास्तदा जैनाः प्रासादाः पृथुतेजसः ॥११॥

अधिष्ठिता भृशं भक्तियुक्तैः शासनदेवतैः ।
सद्धर्मपक्षसंरक्षाप्रवणैः शुभकारिभिः ॥१२॥

रावण रामचन्द्रको जीतनेके लिए बहुरूपिणी विद्याको सिद्ध करने जा रहा हैं, शान्तिनाथ जिनालयमें पूजा आदि कराने का भार मंदोदरी के ऊपर रखा, नोकरोंको बुलाकर आदेश दिया कि शांतिनाथ जिनालयकी उत्तम तोरण आदिसे सजावट की जाय, गौतम गणधर श्रेणिकसे कहते हैं, हे मगधेश ! वह सुर और असुरोंके द्वारा वन्दित बीसवें मुनिसुव्रत नाथ स्वामीका महाम्युदयकारी समय था, उस समय यह लंबी चौडी पृथ्वी (भरतक्षेत्र) अर्हंत भगवान्‌की पवित्र प्रतिमावोंसे अलंकृत थी, देशके अधिपति राजावों तथा गावोंका उपभोग करनेवाले सेठोंके द्वारा जगह जगह देदीप्यमान जिनमन्दिर खडे किये गये थे, ये मन्दिर समीचीन धर्मके पक्षकी रक्षा करनेमें निपुण, कल्याणकारी, भक्तियुक्त शासन देवतावोंसे अधिष्ठित थे' आगेके श्लोकसे कहते हैं कि देशवासी लोग सदा वैभवके साथ जिनमें अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्य जीव सदा जिनकी आराधना करते थे ऐसे जिनालय स्वर्गके विमानोंके समान सुशोभित होते थे ॥१३॥

इस प्रकरणसे यह सिद्ध होता है कि बहुत प्राचीनकालसे जिन मन्दिरोमे शासन देवतावोंके अधिष्ठानकी परिपाटी थी, और शासन देवतावोंके साथ ही जिन प्रतिमावोंको विराजमान करते थे।

शासन देवतावोंको ग्रन्थकारने भक्ति संयुक्त और जिन मार्गकी रक्षा करनेमें समर्थ ऐसा लिखकर उनके यथार्थ स्वरूपका दिग्दर्शन कराया है, साथमें उन्हे समीचीन धर्मकी

रक्षा करनेवाले बतलाया है, इससे ये शासन भक्त देव सम्य-ग्दष्टि होते हैं यह सिद्ध होता है।

आचार्यश्रीने मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरके समयके जिनमन्दिरोंका वर्णन किया है, इससे बहुत प्राचीन कालकी मूर्तियोंका निर्माण, शासनदेवता सहित होता था, यह भी सिद्ध होता है, आचार्य रविषेणका समय भी करीब १२०६ वर्ष प्राचीन है, तो १३०० वर्ष पहिले भी शासन देवतावोंसे युक्त जिन मन्दिरोंकी मान्यता थी यह भी इस प्रकरणसे सहज सिद्ध होता है। ●

इससे शासन देवतावोंको माननेवालोंका सिद्धान्त प्राचीन है, अथवा उसे निषेध करनेवालोंको मान्यता अर्वाचीन है, यह भली-भांति विचार करनेके लिए सामग्री मिल जाती है।

जिनमन्दिर व जिनबिंबोंको निर्माण करते समय इस शास्त्रीय दृष्टिका विचार करना आवश्यक है।

कोई कोई सज्जन इन भवनवासी शासनदेव देवतावोंको सम्यग्दर्शन नहीं होता हैं, अतः ये सम्यग्दृष्टि नहीं हैं, इसप्रकार कहते हैं, वह बिलकुल निराधार है।

भवनवासियोंमें सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका निषेध आगमोंमें नहीं हैं, सम्यग्दृष्टि यहांसे सम्यग्दर्शनसहित मरकर भवनवासी

● द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेर्द्धचतुर्थवर्षयुक्ते।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धं॥

पद्मपुराण तृतीयखण्ड पर्व १२३

आचार्य श्री रविषेणने वीर भगवान् मुक्त होकर १२०४॥ वर्ष व्यतीत हुए थे, तब पद्मपुराणको रचना की है। अर्थात् पद्मपुराणकी रचना तेरासो वर्षके पूर्व की गई है।

आदियोंमें उत्पन्न नहीं होता है, एतन्मात्रसे वहां सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती हैं यह कहना अनुचित है।

भवनवासी देवोंमें कौनसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है इसका ग्रन्थाधार देखियेगा।

'विशेषेण भवनवासिव्यंतरज्योतिष्काणां देवानां देवीनां च सौधर्मैशानकल्पवासिनीनां च क्षायिकं नास्ति। तेषां पर्याप्तकानामौपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति'।

सर्वार्थसिद्धि अ. १ पृ. १०

अर्थात् भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषवासी देव व देवियोंको एवं सौधर्म-ईशान-कल्पवासी देवियोंको क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है, उन्हे पर्याप्तक अवस्थामें औपशमिक, क्षयोपशमिक सम्यक्त्व होता है, इससे उस पर्यायमें सम्यक्त्व प्राप्तिका निषेध नहीं हैं यह स्पष्ट होता है।

अब वहांपर सम्यक्त्वोत्पत्तिका क्या निमित्त हैं, इसका भी आचार्यने विचार किया है।

देवानां केषांचिज्जातिस्मरणम्, केषांचिद्धर्मश्रवणम्, केषांचिज्जिनमहिमादर्शनम्, केषांचिद्देवर्द्धिदर्शनम् एवं प्रागानतात्।

सर्वार्थसिद्धि.

देवोंको सम्यग्दर्शन उत्पत्ति होनेके निमित्तोंमें किसीको जातिस्मरण है, किसीको धर्म श्रवण है, किसीको जिनमहिमा दर्शन है, और किसीको देवोंकी ऋद्धिका दर्शन है।

इससे भली-भांति सिद्ध होता हैं कि वहां सम्यग्दर्शन होता है, तभी तो सम्यग्दर्शन किस निमित्तसे होता है इसका प्रतिपादन किया है।

साथमें यह भी सुतरां संभव है कि उन्हे ये निमित्त मिल भी जाते हैं, कारण वे शासनदेव शासन भक्तिवश देवेन्द्र अथवा ऋद्धिधारी देवोंके साथ तीर्थंकरोंके पंचकल्याणिक अवसरोंमे नन्दिश्वरादि द्वीपोमें, एवं समवरणादिकोंमें जाते ही रहते हैं, ऐसी स्थितिमें वहांपर उन्हे अपने पूर्वभवका स्मरण भी हो सकता है, धर्मश्रवण करते ही हैं, जिनमहिमाको भी देखते है, यदा कदा महर्द्धिक देवोंकी ऋद्धिका भी उन्हे दर्शन होता है सर्व प्रकारके कारण मिलते हैं, फिर सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होनेमें क्या बाधा हैं ? कल्पना मात्रसे निषेध नहीं किया जा सकता हैं, क्यों कि आगम तो उसका समर्थन करता हैं।

कोई कहेंगे कि अमुक देवको सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति अमुक समयमें हुई ऐसा कोई उल्लेख हो तो आगमका आधार बताईये, यह प्रश्न उचित नहीं है सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका उल्लेख हर जगह हर व्यक्तिका करना संभव नहीं हैं, हां ! उनके कार्योंसे कृतिसे निश्चित रूपसे वे सम्यग्दृष्टि हैं ऐसा कह सकते हैं, आचार्योंने भी उन्हे शासनभक्त, धर्मरक्षक, भक्ति संयुक्त, आदि पदोंसे उल्लेख किया है तथापि आप एक वाक्य तो कहीं बतलाईये कि इन शासनदेवोंको सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं हो सकती हैं अतः वे सम्यग्दृष्टि नहीं हैं।

दूसरी बात सम्यग्दृष्टि देवोंको अवधिज्ञान होता हैं, मिथ्यादृष्टि देवोंको विभंगज्ञान होता है, यह भी हम पहिले उल्लेख कर चुके हैं।

गोम्मटसारमें इन भवनवासी आदि देवोंके अवधिज्ञानकी मर्यादा जघन्य व उत्कृष्ट प्रमाणसे बताई गई है, उसे भी देख लेवें।

पणवीस जोयणाइं दिवसं तं चयकुमारभोमाणं ।
संखेहजमसंअज्ज बहुगं कालं तु जोइसिये ॥४२६॥
गोम्मटसार जीवकांड

भवनवासी व्यंतरोंके अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र जघन्यसे २५ योजन है, काल १ दिनमें कुछ कम हैं, और ज्यतिष देवोंका क्षेत्र इससे असंख्यात गुण अधिक काल भी इससे अधिक हैं ।

इसी प्रकार आगेकी गाथावोंमें उन भवनवासी आदि देवोंके अवधिज्ञानसंबंधी क्षेत्र, काल, विषय आदिका स्पष्टीकरण किया हैं, इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन भवनवासी आदि देवोंमें अवधिज्ञान होता है जो सम्यक्त्वसहित हैं। अतः वे सम्यग्दृष्टि होते है ।

सम्यक्त्व मार्गणामें भवनत्रिकमें होनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंकी संख्या बतलाई गयी हैं ।

सोहम्मवासाणं जोयिसिवणभवणतिरियपुढवीसु ।
अविरदमिस्से संखं संखासंखं गुणसासणेदेसे ॥६३७॥
गोम्मटसार जीवकांड

सौधर्म ईशानके ऊपर पाच युगल और ज्योतिषी, व्यंतर भवनवासी, तिर्यंच और सात नरककी पृथ्वी इन १६ स्थानोंके अविरत सम्यग्दृष्टियोंकी संख्या और मिश्रकी संख्या असंख्यात गुणितक्रमसे निकालना, और तिर्यंचसंबंधी देशसंयमीकी संख्या असंख्यात गुणानुक्रमसे निकालना ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भवनवासी व्यंतर देवोंमें भी सम्यग्दृष्टि जीव रहते हैं, तभी उनकी संख्या आगमोंमें कही गई है ।

इस विषयमें अन्य विद्वानोंका भी अभिप्राय देखियेगा ।

—०-०—

जिनपक्षधर सम्यग्दृष्टि ही हैं।

(ले.-जयन्तीप्रसाद जैन, एम.ए.शास्त्री जैनडिग्रिकालेज खतौली)

जिनेन्द्र भगवान्के सेवक, आराधक अथवा चमरधारी देवोंको मिथ्यादृष्टि मानना उचित नहीं है, इस तरह जो मनुष्य भी भगवानकी पालकी उठाते, रथ खींचते, चमर ढोरते, मन्दिर में बुहारी लगाते अथवा अन्य देखभाल या व्यवस्थाके कार्य करते हैं वे भी मिथ्यादृष्टि हो जायेंगे।

पञ्चमकालमें उत्पन्न मनुष्य अधिकांशमें नरकतिर्यञ्च गतियोंसे आते हैं और इन्हीं गतियोंमें जाते हैं तो क्या सभी पञ्चमकालीन मनुष्योंको मिथ्यादृष्टि, जिनधर्मबाह्य अथवा सम्मानके अयोग्य मान लेना चाहिये?

मिथ्यात्व प्रकृतिके कारण किन्हीं विशेष निकायों में जन्म लेनेवाले सभी देव मिथ्यादृष्टि ही हैं, ऐसा कहना जिनवाणी और देवोंका अवर्णवाद करना है, पुराने सम्यग्दृष्टि देवोंके उपदेशसे जिनेन्द्र भगवान्को कुलाधिदेवता मानकर भी पूजनेवाले देवोंमें जिनेन्द्र भगवान्के प्रति श्रद्धा नहीं है अथवा नहीं होगी ऐसा सोचना किस शास्त्रके आधारपर है यह समझमें नहीं आया।

किन्हीं देवोंको श्रीजिनेन्द्र भगवानके यदि निकट नहीं अपितु जिनभवनके प्रवेशद्वार पर भी स्थान मिला तो इससे वह मिथ्यादृष्टि कैसे बन गया? प्रवेशद्वारकी रक्षा करना क्या मिथ्यात्व है? यदि ये देवता जिनशासनसे, जिनधर्मियोंसे अथवा जैनत्वसे अनुराग या वात्सल्य रखते हैं, और कोई भव्य जैन इनका इनके योग्य सत्कार करता है, तो इसमें जिनेन्द्र भगवानकी पूजाका महत्व कहाँ कम हो जाता है? अथवा इन देवताओंकी जिनेन्द्र भगवानके पार्श्वमें खड़े होने या जिनभक्त होनेकी किसी पन्थमें या शास्त्रमें मनाही है?

मनुष्य गतिसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसलिए सभी मनुष्य देवोंसे बडे हैं, यह कल्पना समीचीन नहीं है। सभी देवोंके उच्च गोत्रका उदय रहता है। परन्तु सभी मनुष्योंके नहीं, अतः मनुष्यका बडप्पन सर्वमान्य अथवा सार्वकालिक नहीं हैं। असंयमीकी पूजा तो अवश्य नहीं होती परन्तु असंयमी साधर्मीका उचित सन्मान नहीं होता यह कहां लिखा है? सन्मानके कारण तो मन्द कषाय, भद्र परिणाम, जिनधर्मपालन साधर्मीवात्सल्य अनुकम्पा आदि अनेक गुण भी है, ये इन देवोंमें पर्याप्त प्राप्त होते हैं।

चित्रकला, मूर्तिकला, आदि ललित कलाओंके ऐतिहासिक अध्ययनसे स्पष्ट पता चलता है कि पशुपक्षियोंके चित्र एवं मूर्तियोंके बाद देवी देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण हुआ। देखिये "कलादर्शन", लेखिका शचीरानी गर्टू। भारतमें तीर्थकरोंकी मूर्तियोंके समकालीन ही देवी देवताओंकी मूर्तियां उपलब्ध होती हैं। सबसे प्राचीन तीर्थंकर मूर्ति सिंधूघाटीकी सभ्यताकी खुदाईमें मोहंजोदडो मे मिली हैं। परन्तु इसी खुदाईमें अनेक देवी देवताओंकी मूर्तियां भी मिली हैं।

वास्तवमें अन्तरंग विकास से पूर्व बाह्य विकास ही होता है। इसलिए देवी देवताओं, यक्षयक्षियों आदिकी मूर्तियोंका निर्माण तीर्थंकर मूर्तियोंके बाद का नहीं माना जा सकता। भट्टारकों के सिर इनका उत्तरदायित्व बताना तो केवल अपरिचय दिखाना है। सिंधु घाटीके अनन्तर—

१) "अम्बिकाकी मूर्तियां उदयगिरि, खण्डगिरि की नवमुनि गुफा तथा ढककी गुफामें पाई जाती हैं, जो कमसे कम ईसासे दो सौ वर्ष पूर्वकीं हैं।,

२) "सरस्वतीकी एक मूर्ति कंकाली टीलेसे-मथुरासे प्राप्त हुई है, जो लखनऊ संग्रहालयमें सुरक्षित है, इनका काल १३२ ई० है, इसी कालकी इसी टीलेसे प्राप्त नैगमेशकी मूर्ति भी है। ईसवी तीन तथा चारकी मातृदेवीकी मूर्तिया भी उपलब्ध है।"

३) कषायकालीन (प्रथमसदी) एक जिनमूर्तिके सिंहासन पर बालकको गोदमे बैठाए भद्रासन अम्बिकाकी प्रतिमा है।"

४) "एक और ध्यान देने योग्य प्रतिमा नेमिनाथ भगवान् की है। इसके दाहिनी ओर चार भुजाओं व सप्तफणों युक्त नागराजकी प्रतिमा हैं जिसके ऊपर बायें हाथमे हलका चिन्ह होनेसे यह बलरामकी मानी गई हैं। बाईं ओर चतुर्भुज विष्णु-मूर्ति हैं जिनके उपरके दायें हाथमें गदा व बाएँ हाथमें चक्र है।'

[इन उदाहरणोंके लिए देखिये, डा० श्री हीरालालजीका लेख "जिनमूर्तिकला" वर्धमान कालेज पत्रिका महावीर विशे-षांक, बिजनौर, सन् ७४-७५]

अपना नियोग या कर्तव्य पूरा करनेवाले जिनभक्त देवी देवताओंको आदर देना यदि " वेपेंदी के लोटे बनना है अथवा उंगली पकडकर पहुँचा पकडना है" तो यह कार्य समस्त शलाका पुरुष(तीर्थंकरोंके सिवाय)सदा करते आये है, दिगम्बर आचार्य श्री कुन्दकुन्द जिन्होने गिरनार पर्वतपर अम्बिकादेवीके मुखसे दिगंबरत्वका समर्थन करानेके लिए कविवर वृन्दावनजी शब्दोंमें "सत्यपन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर" पदका उच्चारण कराया था, अकलंक देव-जिन्होंने जैन रथ पहिले चलवाकर रानीकी प्रतिज्ञा पूर्ण कराई थी-आदि आदि सभी जैसे ही रमानने पडेंगे।

यदि मन्दिरजीमें तीर्थंकरोंकी मूर्तियां हटाकर इन देवी देवताओंकी मूर्तियां ही स्थापित कर दी जाती तब तो इनकी मान्यता करनेवालोंपर मिथ्यादृष्टि होनेका आरोप उचित था, अपने अपने स्थानपर जब सब हैं तब व्यर्थ किसीको भोलेभाई, मिथ्यादृष्टि, या बेपेंदीका आदि नाम देना मात्र कषायावेश है, यह भी अत्यन्त आश्चर्य है कि असंयतकी वन्दना न करनेके लिए शास्त्र प्रमाण देनेवाले कुछ आदरणीय बन्धुगण असंयत को सद्गुरु देव कहकर क्यों अपने सम्यक्त्वमें मल उत्पन्न करते है ?

इन पैदायशी मिथ्यादृष्टियोंमें जिनेन्द्र भगवानपर श्रद्धा इसीसे सिद्ध हो जाती है कि इन्हे मूर्तियोंपर भी स्थान मिला हैं। द्वारपर रहनेवाले महलोंमें पहुंच गये तो यह उनकी जिनेन्द्र भक्तिका ही तो प्रताप है, सेवकसे सेव्य, उपासकसे उपास्य, पूजकसे पूज्य एवं भक्तिसे भगवान् बनने की सनातन प्रक्रियामें हम सभीको आगे बढते रहने की भावना रखनी चाहिये, और जो जा रहे हैं उन्हे सन्मान देनाही चाहिये।

एक बन्धुने लिखा है-"हमारे यहां देवोंका मानवोंसे अधिक महत्व नहीं हैं, क्यों कि पञ्चपरमेष्ठी देव नही मानव होते है। जैन सन्देश, ४ मार्च, परन्तु इसी पृष्ठपर ऊपर लिखा गया है, "मूर्तियां देवोंकी बनती थी, देवोंमें होते हैं अरिहन्त और सिद्ध।" यह स्ववचन विरोध कैसा ? यदि देव श्रेष्ठ नहीं होते तो अरिहन्त और सिद्धोंको देव उपाधिसे आप क्यों भूषित करते हैं ? बधाई।

एक स्थानपर फिर लिखा गया है कि "आचार्य उपाध्याय और मुनियोंको मूर्तरूप देनेका विधान जैन प्रतिमा शास्त्रोंमें नहीं मिलता। परन्तु बन्धुवर, इनकी प्रतिष्ठाका विधान तो

जैन शास्त्रोंमें मिलता ही है, इससे स्वयमेव इनकी मूर्तियोंका निर्माण सिद्ध है। देवगढ आदिके कला भाण्डारोंमें इनकी मूर्तियां प्राप्त हैं ही।

पुनः लिखा गया है कि "यदि तुम्हे प्रभावना करनेवालेको ही पूजना है तो सौधर्म इन्द्रको ....।" सो बन्धुवर सौधर्म इन्द्र ही क्या सभी कल्पोपन्न एवं कल्पातीत विमानोंके इन्द्र एवं अहमिंद्रोंको मंत्रोंद्वारा अर्घ्य तथा आहुतियां प्रदान की जाती हैं। "महाहोम विधान" संग्रहकर्ता क्षुल्लक श्री १०५ सुमतिसागरजी महाराज प्रकाशिका-सौ चंचलाबाई रा. शाह, अन्धेरी, बम्बई.

जिनभक्त देवी देवताओंको कुदेव कहना भी असंगत है। कुदेव वे हैं, जो जिनेन्द्र देवके मार्गसे दूर हैं, जैन शासनके विरोधी हैं, जैन धर्मके निन्दक हैं तथा जिनेन्द्रदेवकी शरणसे दूर रहते हैं, इन देवोंने तो अपनेको जिन-चरण-शरण बनाया है इसलिए ये जिनधर्म और सम्यक्त्वके आयतन ही है,अनायतन वे हो सकते है, जो मन्दिरमें पूजाके लिए नही जाते अपितु मूर्तियोंके सन् संवत् देखनेके लिए ही पहुंचते हैं, अथवा किसी पुस्तकमें एक चित्र विशेष के छप जानेके कारण महाव्रती के विषयमें यद्वातद्वा विचार लाते हैं।

निःसन्देह पञ्चगुरु चरण शरण किसीभी भव्यके जीवनके लिए श्रेष्ठ उपलब्धि है। यदि कोई निर्भय निर्द्वन्द्र होकर समग्र जीवन इसी शरणमें रहता है तो उसके समान भाग्यशाली दूसरा नहीं। पर जीवनके झंझावातोंमें प्राणी की नैया डगमगाती तथा डूबनेको हो जाती है, उस समय पञ्चगुरुके चरणोंकीं शरण सुरक्षित बनी रहे मात्र इसी प्रयोजनसे इन देवी देवताओंकी अनुकम्पा बडी सहायक हो जाती है। इसलिए यदि कोई ऐसी सहायता प्राप्त करता है अथवा उसका मार्ग

बताता है तो कृपया उसे बेपेंदीका मत कहिए। उसको पेंदीमें नहीं उसके पवित्र हृदयमें पञ्चपरम गुरुओंके चरण ही निरन्तर विराजमान हैं।

—००—

अब प्रतिष्ठा शास्त्रोंमें इन शासन देवतावोंकी स्थिति क्या है इसपरभी विचार करना आवश्यक है, कुछ हमारे बन्धु कहते हैं कि इन देवोंकी मान्यता प्रतिष्ठा विधितक ही सीमित होनी चाहिये, अन्य नित्य पूजादि विधिमें इनकी आवश्यकता नहीं है, वे धर्मबंधु इस विषयपर तडजोड (*Compromise*) करना चाहते हैं कि कुछ स्थानोंमें इनको मान लो, कुछ स्थानोंमें इनको छोड दो, इसप्रकार उनका विचार प्रतीत होता है, परन्तु आगमकी मान्यताके विषयमें तडजोड (तस्वोया) करनेका प्रश्नही उपस्थित नहीं होता है, और न किसीको उस प्रकारका अधिकार है, यदि प्रतिष्ठा विधि सदृश महान् यज्ञमें इनकी मान्यता हो सकती है तो सामान्य पूजामें इनकी मान्यता करनेमें क्या हानि है ? एक जगह आदरणीय है वह अन्यत्र अनादरणीय क्यों ? इसलिए यह तर्क कुछ समझमें नहीं आता है, अतः प्रतिष्ठा विधिके समान ही अन्यत्र पूजन विधिमें भी दशदिक्पालक आदिके समान अन्य शासन देवतावोंका भी योग्य समादर करना समुचित हैं।

वसुनंदि प्रतिष्ठसारसंग्रह

प्रचलित अनेक प्रतिष्ठापाठोंमें यह बहुत प्राचीन प्रतिष्ठापाठ है, वसुनन्दि सिद्धांतचक्रवर्तिके द्वारा विरचित वसुनन्दि श्रावकाचार भी है, प्राकृतमें है, इसलिए वसुनन्दि आचार्य सैद्धांतिक विषयमें कितने उद्भट थे, विद्वान् थे

इसका अनुमान किया जा सकता हैं, वसुनन्दि आचार्यके संबंधमें सर्वत्र मान्यता है।

उन्होने एक प्रतिष्ठा पाठका भी निर्माण किया है, उसमें मूर्ति निर्माण, मन्दिर निर्माण, मूर्तिआकार मन्दिरआकार वगैरेके साथ संपूर्ण प्रतिष्ठा विधान है।

मूर्तिनिर्माण, मुहूर्त, स्थानशुद्धि, मन्दिरनिर्माण विधि आदि विधानमें सर्वत्र उन्होने क्षेत्रपाल, दशदिक्पालक, तिथि-देवता, भूमिदेवता आदिकी पूजाका विधान किया है, उन सबका उद्धरण यहांपर हम नहो देते हैं, तथापि जिनबिंब प्रक-रणका आचार्य देवने प्रतिपादन किया हैं, उसका उद्धरण देना यहां आवश्यक है। जिनबिंब निर्माणका विधान करते हुए निम्न-लिखित प्रकरण पठनीय है, किसी बन्धुने लिखा कि उपलब्ध प्रतिष्ठा पाठोमें वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ सर्व प्राचीन है, उसमें शासनदेवतावोंका उल्लेख नहीं है, अथवा मूर्तिके पार्श्वमें यक्ष और यक्षीके निर्माणका विधान नहीं है, उनसे भी हमारा अनु-रोध हैं कि वे इस प्रकरणको ध्यान पूर्वक देखें, उन्हे समझमें आवेगा कि वसुनन्दि सिद्धांत चक्रवर्तिका भी क्या अभिप्राय हैं?

जिनबिंब निर्माण प्रकरण

यक्षं च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासनदेवता।
लांछनं पादपीठाधः स्थापयेद्यद्यथा भवेत् ॥१२॥
चतुर्भुजः सुवर्णाभो गोमुखो विहवाहनः।
वामेन परशुढं ते बीजपूराक्षसूत्रकम् ॥१३॥
वरदानपरं सम्यक् धर्मचक्रं च मस्तके।
संस्थाप्य गोमुखो यक्षः आदिदेवस्य दक्षिणे ॥१४॥

वामे चक्रेश्वरी देवी स्थाप्या द्वादश सद्भुजा ।
धत्ते हस्तद्वये वज्रं चक्राणि च तथाष्टसु ॥१५॥
एकेन बीजपूरंतु वरदा कमलासना ।
चतुर्भुजाथवा चक्रं द्वयोर्गरुडवाहनम् ॥१६॥
अजितस्य महायक्षो हेमवर्णस्चतुर्मुखम् ।
गजेंद्रवाहनारूढः स्वोचिताष्टभुजायुधः ॥१७॥
देविलोद्भासनारोहि व्याख्या चतुर्भुजः ।
वरदाभयहस्तोसौ शंखचक्रध्वलायुधः ॥१८॥
षड्भुज स्त्रिमुखो यक्ष स्त्रिनेत्र शिखि वाहनः ।
श्यामलांगो विनीतात्मा संभवं जिन आश्रित : ॥१९॥
प्रज्ञप्तिर्देवता श्वेता षड्भुजा पक्षिवाहना ।
अर्धेन्दु परशुं धत्ते फला श्रेष्टवरप्रदा ॥२०॥

इन श्लोकोंको हम पूर्ण व अर्थ नही लिखते हैं, इनमें संक्षेपतः यह सार बतलाया है कि चोवीस तीर्थंकारों के चोबीस-ही यक्ष और यक्षी हैं, जिनको शासन देव और शासन देवता के नामसे ही कहते हैं, उनका रूप,वर्ण, आयुध,वाहन, शरीर आदि का वर्णन इन श्लोकोमें आचार्य वसुनंदि सिद्धांत चक्रवर्तिने किया है, और यह भी लिखा हैं कि यक्षको प्रतिमाके दक्षिण भाग में और यक्षी को वाम भाग में प्रतिष्ठित करनी चाहिये.

इसी प्रकरण में इन शासन देवतावों के पर्याय नामोंका भी उल्लेख किया है, जिनसे कोई नामभेद के कारण असंगति नही दिखा सके ।

इंद्रनंदिसंहिता

त्रिवर्णाचार व प्रतिष्ठाविधिको प्रतिपादन करनेवाली प्रसिद्ध इंद्रनंदिसंहिता है, इसमें प्रतिष्ठा विधानका सांगोपांग

निरूपण किया है। साथ में इसी ग्रंथ में त्रैवर्णिक आचार विधान भी है। इस ग्रंथ का आधार उत्तरवर्ति अनेक ग्रंथकाकारोंने लिया हैं। सो यह निश्चित है कि उस समय यह ग्रंथ सबको मान्य रहा है।

इस ग्रंथमें अंकुरारोपण विधिसे लेकर सर्व प्रतिष्ठा विधान मे स्थान स्थानपर दिक्पालक, क्षेत्रपाल, चतुर्विशति यक्ष, चतुर्विशति यक्षिणी आदिका आव्हान किया हैं, और पूजनका भी विधान हैं।

उदाहरण के लिए देखिये :-

"ओं ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्ण सर्वलक्षणसंपूर्णस्वायुधवाहन वधूचिन्हसपरिवारा यक्ष, वैश्वानर राक्षस नधृत पन्नगासुर सुकुमार पितृविश्वमालिन् चमर वैरोचन महा विद्यमार विश्वेश्वर पिंडाशिन्यः पंचदशतिथिदेवता आगच्छेत आगच्छत स्वाहा स्वधा," पूजामंत्रः।

इसके ऊपर इन तिथि देवताओं का उल्लेख इस प्रकार हैं।

तद्बाह्येपि लिखेद्वृत्तं मंडलं शुभलक्षणं
तत्र स्थाप्याः क्रमात्पंचदशापि तिथिदेवताः।
यक्षो वैश्वानरोरक्षो नधृतः पन्नगोऽसुरः
सुकुमारः पिता विश्वमाली चमर विश्रुतिः।
वैरोचनो महाविद्यामारो विश्वेश्वराव्हयः
पिंडाशी चेति ताः प्रोत्माः देवताः प्रतिपन्मुखाः।

इसी प्रकार चोवीस शासन देवतावोंका भी उल्लेख ग्रंथकारने जो किया है वह भी देखियेगा।

मध्यमे मंडले पश्चात्सवुत्तरविभागात:
स्थापयेद्देवतां यक्षीश्चतुर्विंशतिसम्मिता:
चक्रेश्वरी रोहिणी च प्रज्ञप्तिर्वज्रशृंखला ।
वरदत्ता मनोवेगा कालिज्वालाविमालिनी ।।
महाकाल्यभिधादेवी देवी मानसिकाव्हया ।
गौरी गांधारिका देवी साच वैरोहि काव्हया।
तथानंतमती मानसी महामानसी जया ।
विजयान्यापराजिता बहुरूपिण्यभोष्टिता।
चामुंडाख्याथ कूष्मांडी पद्मा सिद्धायिनीति च ।
वं भं दलांतरालाग्रे पूर्ववल्लेखनक्रम: ।।
ओं ह्रीं चक्रेश्वर्यै स्वाहा, इत्यादि लेखनक्रम: ।
ओं ह्रीं क्रों चक्रेश्वरी प्रभृति शासनदेवता आगच्छत
आगच्छत स्वाहा स्वधा, ।। पूजामंत्र: ।।

इस प्रकरणसे स्पष्ट होता है कि प्रतिष्ठापाठोमें किस प्रकार शासनदेवतावोंका समादर किया गया है ।
अन्य प्रतिष्ठा पाठ भी देखियेगा ।

कुमुदचंद्रकृत प्रतिष्ठाकलाप

इसमें भी प्रारंभमें प्रतिष्ठा भेद, आचार्य लक्षण वगैरे शास्त्रोक्त परंपराके अनुसार वर्णित है । एवं यथास्थान शासन देवी देवतावों का भी आव्हान किया गया है । एवं समादर करनेकी प्रक्रिया बतलाई गई है ।

जलयात्राके प्रकरण में वरुण देवका आव्हान व आदर है । गर्भावतार कल्याण के प्रकरण में चतुर्विंशति जिनमात्र कावोंको आव्हान कर उनको अर्घ्य चढाया गया है । इसी प्रकार श्री आदि देवियोंका भी आव्हान किया है । दिक्पाल को

की भी पूजन हैं। नवग्रहोंका स्तोत्र है। दिक्कुमारियोंका अर्चन हैं। क्षेत्रपालकी पूजा है। षोडश विद्या देवतावोंकी अर्चना है। इन सब बातोंके मंत्रोंका उद्धरण देनेकी आवश्यकता नहीं हैं, जिनको देखनेका हो वहांसे देख सकते हैं।

इसी प्रकार भट्टाकलंक संहिता, एकसंघ संहिता, ब्रह्म-सूरि संहिता, जिनसेन संहिता, आदि सभी संहिताओं मे शासन देवता ओं का सत्कार है । यथा स्थान उनको आव्हान कर उनकी स्थापना की गई है। उन सब संहितावोंका उद्धरण देकर हम ग्रंथ के कलेवर की वृद्धि करना नहीं चाहते हैं। उन सबमें इस विषय के लिए यथेष्ठ प्रमाण उपलब्ध है, इतना ही निर्देश कर देते हैं।

नेमिचंद्रकृत–प्रतिष्ठातिलक

यह प्रतिष्ठातिलक मुद्रित हैं और दक्षिण व उत्तर भारतमे इसको बडी प्रसिद्धी है। इसमें प्रतिष्ठा संबंधी सांगो-पांग विधि विधान है, सभी लोगोने प्रायः संक्षेप संग्रह इसी प्रतिष्ठा तिलकके आधारपर ही किया है। इसमे व्यास, मध्यम व लघुप्रतिष्ठा का विवेचन है, स्थिर व चर प्रतिमावों के साथर गुरुचरण, गुरुमूर्ति व यक्ष यक्षी प्रतिष्ठा का भी विधान हैं। मूल विषय को प्रतिपादन करने के लिये विस्तृत गद्य भाग का भी पाठ है, तदनंतर मंत्र विधि है। स्वयं ग्रंथकारने इस ग्रंथ के संबंध मे विवेचन किया है, वह ध्यान देने योग्य हैं।
ग्रंथका मंगलाचरण इस प्रकार है।

श्रीमत् त्रिलोकीतिलकं जिनेन्द्रं स्वात्मप्रतिष्ठं सकलप्रतिष्ठं,
नत्वा प्रतिष्ठातिलकं प्रवक्ष्ये संगृह्य सारं जिनसंहितानाम्

– प्रतिष्ठातिलक १

मंगलाचरण में भगवान् जिनेंद्र भगवंतको नमस्कार कर प्रतिष्ठातिलक प्रतिपादन की प्रतिज्ञा की है। एक बात ध्यान देने योग्य है कि यह प्रतिष्ठातिलक श्री नेमिचंद्र की स्वकपोल कल्पना की कृति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जिनसंहिता शास्त्रों का सार संग्रह कर मैं इस प्रतिष्ठातिलक का प्रतिपादन कर रहा हूं। इस से दो बात सिद्ध होती है, एक तो उनके सामने अनेक जिनसंहिता शास्त्र विद्यमान थे, दूसरी बात उन जिनसंहिता ग्रंथोका सार उन्हे संग्रह करना पड़ा, क्योंकि संहिता शास्त्र में अनेक विषयोंका जैसे प्रतिष्ठा, त्रिवर्णाचार, षोडश संस्कार, ज्योतिष, वैद्यक आदि अनेक विषयों का संम्मिलन रहता है। उनमें से एक ही प्रतिष्ठा संबंधी विषयका विवेचन करना हो तो उसे अलग संग्रह करना आवश्यक होता है, ग्रंथकारने प्रामाणिकता के साथ यह कार्य किया है।

अपनी प्रामाण्यपरंपरा का निर्देश करते हुए स्वयं ग्रंथकार कहते हैं कि :-

इंद्रनंद्याशाधरोदित-प्रतिष्ठाशास्त्रसंग्रहात् ।
पूर्वाचार्यप्रणीतं स्यादिदं तेन प्रमाणताम् ॥

यह प्रतिष्ठाशास्त्र इंद्रनंदि, वसुनंदि, आशाधर आदि अनेक पूर्व ग्रंथकारों के द्वारा निर्मित प्रतिष्ठा संबंधी शास्त्रोंका संग्रह है, इसलिए मेरा स्वयं कुछ भी नहीं है। पूर्वाचार्यप्रणीत है, अतः प्रामाण्यता को प्राप्त है। विद्वानोंका कर्तव्य है कि इसे प्रमाण माने।

इदं प्रतिष्ठा शास्त्रौघ-प्रधानमिति युज्यते ।
तत्सारसंग्रहात्मत्वाद्ग्रंथानां गधयोगवत् ॥

प्रतिष्ठातिलक ३

समस्त प्रतिष्ठा शास्त्रोंके सारभाग का संग्रह कर मैंने इस प्रतिष्ठातिलक की रचना की है, इसलिए जैसे अनेक सुगंध पदार्थोंका सार-अर्क निकालकर एकत्रित करनेपर वह महान सुगंध होता है, उसी प्रकार सर्व प्रतिष्ठा शास्त्रो में यह प्रमुख प्रतिष्ठातिलक माना जाता है, यह ग्रंथकारने जो कहा है, समुचित है।

प्रतिष्ठा विषय को प्रतिपादन करनेवाले इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का अवलोकन कीजिये।

सकलीकरण के बाद नांदीमंगल विधान हैं। नांदीमंगल में सर्व प्रथम पंचकुमार देवोंकी पूजा है, नंतर दिक्पाल अर्चन है। उसमे इंद्रको आव्हान करते हुए निम्न लिखित श्लोक है।

उत्तुंगं शरदभ्रशुभ्रमुचिताबभ्रस्फुरद्विभ्रमम्
तं दिव्याभ्रमुवल्लभं द्विपमुपारूढं प्रगाढश्रियम्।
दंभोलिश्रित पाणिमप्रतिहताज्ञैश्वर्यविभ्राजतम्
शच्या संयुतमाव्हायामि मरुतामिद्रं जिनेंद्राध्वरे॥
प्रतिष्ठातिलक-१८

इस में प्रतिष्ठा सदृश महान कार्य में कोई प्रकारका विघ्न नहीं आवे इस उद्देश से दशदिक्पालकों को आव्हान किया जाता है। उन्हे यथास्थान आकर विराजमान होने के लिए निवेदन किया जाता है,इस श्लोक मे इंद्र दिक्पालकका आव्हान है। इसी प्रकार अग्नि, यम नैऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान धरणेंद्र व चंद्र को भी आव्हान किया गया है।

इसी प्रकार आगे जाकर यक्ष, यक्षी, एवं ब्रह्मदेव की भी पूजा की गई है। यक्ष पूजाका मंत्र यह है।

यक्षं यजामो जिनमार्गरक्षा,–
दक्ष सदा भव्यजनैकपक्षम्,
निर्दग्धनिःशेषविपक्षकक्षं,
प्रतीक्ष्यमत्यक्षसुखे विलक्षम् ॥

इस मंत्र से यक्ष का आव्हान कर अर्घ्य दिया गया है।

पीठयंत्राराधनामें नवदेवतावों की आराधना के बाद दशदिक्पालक, चतुर्विंशति यक्षयक्षी, नवग्रह देवतावों का भी आव्हानन व अर्घ्य है। द्वारपालोंका भी यथायोग्य समादर है।

अंकुरार्पण विधानमें सर्वाह्ण्यक्षका आव्हान व पूजा है। तदनंतर श्री आदि देवियों को, दिक्पालकों की, असुरकुमारादि भवनवासी इंद्रोंकी पूजा हैं। इसी प्रकार सौधर्म ईशान आदि कल्पेंद्रो को पूजा है। तदनंतर पंचकुमार देवोंकी पूजाकर मृत्तिका संग्रह करनेका विधान है, नंतर अंकुरार्पण हैं।

आगेके प्रकरण में होमविधान हैं। होम विधान में नवग्रह देवता, पंचदशतिथिदेवता, यक्ष यक्षी आदिका आव्हान है। एवं उनको अर्घ्य प्रदान हैं, वेदीनिर्माण विधिमें नवग्रह होम का विधान है, तदनंतर ध्वजारोहण विधान हैं। जिसमे पंच-कुमार देवों की आराधना, सर्वाह्ण यक्षकी पूजा, अष्ट दिक्कन्य-कावों का आव्हान, आदि विधिके अनंतर भेरीताडनप्रयोग हैं, इसमें भी दशदिक्पालक, अष्टदिक्कन्यकायें, आदियोंका आव्हान हैं। माला मृगेंद्रादि दश प्रकारके ध्वजावों की स्थापना है उनको अधिष्ठात्री देवियों की उपासना हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि इन प्रकरणो में दशदिक्पालक, यक्ष यक्षी आदिका आव्हानन व समादर करना आवश्यक है।

इनका वर्णन करते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि :-

जयं जनानां प्रभवमावहंत्यो
जयोजिता निर्जितवैरिवर्गाः,
जयादिदेव्यो जिनपादभक्ताः
स्थापस्य ताः सन्निहिता भवंतु ॥

इस वर्णनसे उन देवियों में जिनेंद्रभक्ति किस श्रेणी की है यह अच्छीतरह ज्ञात होता है। इसी प्रकार विद्यादेवतावों का, विश्वेश्वरादि जिन मातृकावोंका, चतुर्णिकायामर देवोंका, तिथिदेवतावों का ज्योतिषवासी देवोंका उल्लेख है।

यक्षों के संबंधमें लिखते हुए ग्रंथकार कहते हैं,

यक्षाह्वया रक्षितधर्ममार्गा
ये गोमुखाद्यास्त्रिगुणाष्टसंख्याः
संख्यावताभिष्टुफलप्रदानाः
स्थापस्य ते सन्निहिता भवंतु ॥

प्रतिष्ठातिलक

इसके आगे यक्षी, दिक्पालक, सोमादिचतुर्द्वारपालक, विजयादि देवी आदि अनेक देवी देवतावों का उल्लेख है। इस प्रकार भेरीताडन विधिपर्यंत अन्य जिनेंद्रादिक पूजन के साथ अनेक देवी देवतावों का आह्वान व पूजन हैं। अर्थात् प्रतिष्ठा विधान में इनका भी आह्वान करना आवश्यक है। अन्यथा शास्त्रोक्त विधानकी पूर्ति नहीं हो सकती है।

इसके आगे महायागमंडलाराधना है, जिसमें दशदिक्-पालक, कुमुदादि द्वारपालानुकूलन, के बाद जयादि अष्ट देवतावों की पूजा है। पूजाकी प्रतिज्ञा करते हुए ग्रंथकारने लिखा है।

भुवनविजयदृप्तानंगमोहादिविद्विट्
विजयविजितलोक-श्रीजिनेंद्रांघ्रिभक्ताः।
विमलविजयवक्षा जैनमार्गैकरक्षा
विधिवदिह यजामः साधुदेवीर्जयाद्याः॥

प्रतिष्ठातिलक

इसके बाद इन देवियों की प्रत्येक पूजा हैं। तदनंतर षोडष दलपर षोडशविद्या देवतावोंकी पूजा है, तदनंतर जिन-मातृकावों की पूजा हैं, नंतर ३२ दलपर ३२ इंद्रोंकी उपासना है, इसी प्रकार नवग्रहों की भी आराधना है, तृतीय मंडल में चतुर्विंशति यक्षोंकी पूजा है। चतुर्थ मंडलमें स्थापित यक्षियोंकी पूजा है। पंचम मंडल में स्थापित दिक्कन्यकाओंकी पूजन हैं। दशदिक्पाल कों की पूजा है। विजयादि यक्षों की आराधना के बाद देवर्षियोंका सत्कार हैं, तदनंतर आयुधाष्टक, बाणचतुष्टय, सिद्धार्थ, यवारक, शिला आदिकी स्थापना के साथ उनकी अधिष्ठात्री देवियों की पूजा है।

इन शासन देवी देवतावों की पूजा में उनका वर्णन है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि वे सम्यग्दृष्टि जीव है, उसके विना न तो उनसे जिनशासन की सेवा हो सकती हैं, और न प्रतिष्ठादि महान् कार्यों मे उनका स्मरण ही किया जा सकता हैं।

महायागमंडलाराधनासे इन शासनदेवतावों को हटा दिया जाये तो वह महायागमंडल प्राणशून्य हो जावेगा। जिससे मूर्तिपर आगामी संस्कार नहीं हो सकेंगे।

गर्भावतरण कल्याण

इसके बाद गर्भावतरण कल्याणका विधान है, गर्भावतरण कल्याण में गर्भशोधन श्री आदि देवियां करती हैं, उनका आव्हान

व यथास्थान स्थापन हैं, इसी प्रकार जिनमातृकावों को पूजन है, गर्भशोधनके पहिले उन श्री आदि देवियों की उपासना है, इसी प्रकार दशदिक्‌पालकों की पूजा है, इस गर्भावतरण कल्याण के अंत में जिनमातृपूजन व जिनमातृस्तवन भी है।

जन्माभिषेक कल्याण

इस के बाद जन्माभिषेक कल्याण है। जातकर्मका स्थापना में दिक्‌कुमारियोंकी यथादिशि स्थापना है, जिनाभिषेक के प्रारंभ में दशदिकपालकोंका विधान हैं, इस कल्याण के अंत में भी जिनमातृस्तवन हैं।

कुमारक्रीडा, पट्टाभिषेक, राज्यशासन विधान के साथ दीक्षा कल्याण हैं।

केवल ज्ञान कल्याण मे प्रतिष्ठा होमका विधान है,प्रतिष्ठा होम मे शासनदेवतावों की आराधना है।

निर्वाण कल्याण मे अन्य सत्कारों के साथ अग्निकुमार देवकी पूजा है, तदनंतर महाभिषेकको विधि हैं। सिद्धार्चना व सिद्धप्रतिष्ठा हैं, प्रतिष्ठा के अंतमें यक्षयक्षी प्रतिष्ठा है।

इस प्रकार प्रतिष्ठातिलक मे यत्र तत्र शासनदेवतावोंका आव्हान पूजन वगैरे का विधान है, और मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा सदृश महान्‌ कार्य मे इसकी आवश्यकता भी हैं।

सुनते हैं कि शासनदेवतावों के संबंधमें रुष्ट होनेसे एकाध प्रतिष्ठा पाठसे उन सब देवी देविदेवतावों को हटा दिया गया है। परंतु शासन देवतावों के समादर की रहित करने से प्रतिष्ठा विधान के सांगोपांगता में कैसी न्यूनता होगी इसे हमारे सुबुद्ध विचारक सोंच सकते है। इस लिये

इन शासनदेवतावों का विरोध करते समय सोच समझकर विरोध करना चाहिये ।

प्रतिष्ठातिलकके अंत में वास्तुविधि हैं, उसमें समस्त वास्तुदेवतावों की पूजा है ।

आशाधरप्रतिष्ठापाठ

महापंडित आशाधर कृत प्रतिष्ठा पाठ भी महत्वपूर्ण व प्रौढ है । इस में भी अन्य प्रतिष्ठापाठोंके समान सर्व सांगोपांग विधान, अपितु संक्षिप्त है । संक्षिप्त होने पर भी कोई भी विधि छोडी नही गई है । यथास्थान, दशदिक्पालक, द्वारपालक, तिथि देवता, विद्यादेवता, भवनेंद्रादिकोंका आव्हान, विजयादि देवियों की उपासना, शासनदेवी देवतावों का आदर किया गया है । केवलज्ञानकल्याण मे भगवंत को केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद देवेंद्र कुवेर को आज्ञा देकर समवसरण की रचना कराता है । तदनतर अष्टमहाप्रातिहार्य, चक्रत्रय, छत्रत्रय, लांछन, अष्टमंगल आदि की रचना के साथ साथ शासन देवी देवतावों को भी नियुक्ति करता है, ग्रंथकारने उसका उल्लेख निम्नलिखित प्रकार किया हैं ।

शक्रेण सत्कृत्य सुभाक्तिकत्वात्
त्रातुं नियुक्तो जिनशासनं यः ।
कामान् दुहन्नीशजुषां यथा स्वं
प्रतिष्ठितस्तिष्ठतु सैष यक्षः ॥२१५॥
आशाधरप्रतिष्ठापाठ

जिसकी अतिशय शक्ति को देखकर देवेंद्रने सत्कार कर जिनशासन को रक्षा के लिए प्रतिष्ठित किया वह यक्ष सर्व

इष्टार्थ को प्रदान करनेवाला होवे, इस प्रकार संकल्प कर उस यक्ष प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करें।

इससे यह भली भांति सिद्ध होती है कि जिनप्रतिमा के पार्श्व में यक्ष तथा यक्षी की प्रतिमा का होना अनिवार्य है और वह यक्ष यक्षी जिनेन्द्र भगवंत के प्रति अतिशय भक्तियुक्त होते हैं, उनकी शासनभक्ति को देखकर ही देवेंद्र उन्हे शासन-रक्षा के लिए नियुक्त करता है, यह अभिप्राय उस श्लोक में व्यक्त किया है।

अब यक्षी की स्थापना को भी देखिएगा।

तद्वत्स्वयूथेष्वतिवत्सलत्वात्
निवारयंती दुरितानि नित्यम्
यथोचितं शासनदेवतेति
न्यस्तात्र यक्षी प्रतपत्वसद्दृयम् ॥२१६॥

आशाधरप्रतिष्ठापाठ

साधर्मियों के प्रति अत्यधिक वात्सल्य को धारण करने वाली एवं पापों को प्रतिनित्य दूर करनेवाली यह यक्षी शासन देवता के नाम से प्रसिद्ध है, वह उचित है। उस यक्षी की स्थापना मैं यहां करता हूं, यह कहते हुये यक्षीप्रतिमाके ऊपर पुष्पांजली क्षेपण करें।

इससे पं. आशाधरजीने पूर्व परंपारके अनुसार मूल प्रतिमा के दोनो पार्श्वमें यक्ष यक्षी की स्थापना करना आवश्यक है, यह प्रतिपादन किया है। एवं प्रतिष्ठा पाठ में भी जगह जगह चतुर्विशति शासनदेवी देवतावों की आराधना का विधान किया है।

पं. आशाधरजी अपने समय के महान् विद्वान् हुए है, अनेक साधुवों को भी आपने अध्यापन कराया है, गृहस्थ विद्वान

होनेपर भी सूरिकल्प पं. आशाधर कहलाते थे, उन्होंने श्रावक और साधुओं के आचार संबंधी महत्वपूर्ण ग्रंथोंका निर्माण किया है। नित्य महोद्योत नामक जिनपूजा व अभिषेक संबंधी ग्रंथका भी निर्माण किया है, पूजा विधान भी उनके द्वारा रचित उपलब्ध होते हैं। सहस्रनाम पर सुंदर टीका भी है। अनेक ग्रंथोंका उल्लेख होनेपर भी अनुपलब्ध हैं।

श्री॰ पं॰ आशाधरजी बहुश्रुत विद्वान थे, अतः उनके द्वारा रचित सर्व अनुयोगों के ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, उनके सामने भी अनेक प्रतिष्ठा शास्त्र पूर्वाचार्यों के द्वारा विरचित मौजूद होंगे, उन्होने अपनी प्रशस्ति में निम्नलिखित प्रकार उल्लेख किया है।

प्राच्यानि संचर्च्य जिनप्रतिष्ठा-
शास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैन्द्रं
आम्नायविच्छेदतमश्छिदोयं
ग्रंथः कृतस्तेन युगानुरूपः ॥१८॥

प्रतिष्ठापाठ प्रशस्ति

इससे यह निश्चित है कि पं. आशाधरजी ने इस ग्रंथ की रचना स्वकपोलकल्पनासे नहीं की है, अपितु पूर्वाचार्यों के ग्रंथोंको आदर पूर्वक देखकर उसके अनुसार ही इसकी रचना की है।

दूसरी बात पूजा प्रतिष्ठादि शास्त्रोमें मीन मेख निकालनेवाले लोग उस समय भी होंगे, उनकी वृत्तिसे आम्नाय का विच्छेदन होना सुतरा संभव था, परंतु आशाधरजीने इस प्रतिष्ठा पाठकी रचना में अम्नायका विच्छेदन न हो इसका पूर्ण ध्यान रखा है, एवं यह ग्रंथ युगानुरूप निर्माण किया गया है। इसका यह अर्थ नहीं है, युगकी मांग के अनुसार कोई तत्व

बदल दिया गया हो, उस युगमें प्रतिष्ठा शास्त्रमे कुछ संक्षेप रुचिवाले उत्पन्न हुए होंगे, उनके संतोष के लिए एवं खांडिल्य कुल के भूषण, श्रावक धर्ममे रत, नलकच्छपुरनिवासी, जिनेंद्र पूजा, पात्रदान आगमोद्योत एवं प्रतिष्ठा शास्त्रके प्रेमी अल्हण पुत्र के आग्रहसे इस ग्रंथ की रचना की है। इससे इस ग्रंथका प्रामाणिकता के संबंधमें काफी प्रकाश पडता है, यह प्रचलित प्रतिष्ठा पाठोमें प्रमुख है।

वसुबिंदु अपरनाम जयसेन प्रतिष्ठापाठ

यह जयसेन प्रतिष्ठा पाठके नामसे प्रचलित है। जयसेन के द्वारा विरचित है, इसमे प्रायः सर्व विधियोमें तथोक्त शासन देवतावों के आदर का अभाव प्रतीत होता है। अंकुरार्पण विधि सदृश प्रयोगोमे भूमि से जहां मृत्तिकाका संग्रह किया जाता है तत्रस्थ क्षेत्रपाल देवों का समादर नही करना अटपटासा लगता हैं, इसी प्रकार अन्य प्रसंगोमें भी प्रतिष्ठाकारोने जो औचित्य प्रदर्शन किया है, उसका इसमे लोप किया गया है।

इस प्रतिष्ठा पाठकी मूल हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं होती है, इससे अनुमान किया जा सकता है कि या तो इस ग्रंथ से उक्त सभी शासनदेवतावों के प्रकरण को निकालकर मूल ग्रंथका नाश किया गया है, अथवा इन देवीदेवतावों को छोडकर ही प्रतिष्ठा की सर्व विधि लिखी गई है। इस संबंधमे अनुसंधान की आवश्यकता हैं।

एक बात को यहांपर हमे लिखनेमें संकोच नहीं होता है कि लोगोने कितना ही प्रयत्न किया परंतु वे ग्रंथसे इन देवी देवतावों को सर्वथा लोप नहीं कर सके, क्योंकि वस्तुस्थिति का अपलाप विद्वान व्यक्तिके द्वारा होना संभव नही हो सकता है,

जरा इस प्रतिष्ठा पाठके पृष्ठ नं. १०१-१०२ निकालकर देखियेगा।

अब यहां विशेष विधि है सो वर्णन करिये है।

चतुर्णिकायामरसंघ एवं
आगत्य यज्ञे विधिना नियोगम्
स्वीकृत्य भक्त्या हि यथार्हदेशे
सुस्था भवंत्वाह्निककल्पनायाम् ॥३२२॥

प्रथम चतुर्निकायका जिनभक्त देवका समूह जे इहां यज्ञमें आय विधिपूर्वक अपना नियोगनै अंगोकार करि भक्तिकरि यथायोग्य स्थानमैं तिष्ठकरि नित्य सेवामें सावधान हो ॥३२२॥

उपर्युक्त कथनमें जिनभक्त देवका समूह, विधिपूर्वक अपना नियोगने अंगोकार करि, यह पद ध्यानमे लेने योग्य हैं।

चतुर्णिकायामर देवों के समूह मे जिनभक्त देवोंका ही यहां स्मरण किया जाता है, यह निश्चित हुआ।

विधिपूर्वक उनका नियोग क्या है ? जयसेन आचार्य ने उसका उल्लेख नहीं किया है, जब उन्होने उसको विधी नहीं बतलाई है या उसमेसे निकालो गई है या सुतरां सिद्ध हो जाता है कि उसकी विधि अन्य प्रतिष्ठा ग्रंथोमें जो प्रतिपादन किया है वह उनको मान्य है, इसलिए उन्हे इस प्रसंगमे उन्होने स्मरण किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि शासन देवी देवतावों की आराधना इस प्रतिष्ठा कारको भी मंजूर है।

आगे जरा और देखिये,

वायुकुमार देवका आव्हान इस प्रकार किया है।

आयात मारुतसुराः पवनोद्भटाशाः
संघट्टसंलसितनिर्मलतांतरिक्षाः
वात्याविवोधपरिभूत वसुंधरायाम्
प्रत्यूहकर्मनिखिलं परिमार्जयन्तु ॥३२३॥

भो पवनकुमार जातिके देव हो ! तुम, पवनकरि उद्‌भट किई है, दिशा जिनि अरु पवनका संघट्टकरि लसित निर्मल किया है, आकाश जिनने, अरु पवनका समूह आदि दोष करि तिरस्कृत भूमिमें प्राप्त भयो विघ्न कर्मनें दूरि करो, इहां आवो।

इस अर्थ को विशदता के संबंधमे हमे कुछ भी कहना नहीं हैं, कदाचित् वह विषयांतर होगा,परन्तु इतना ही कहना हैं कि ग्रंथकारको इस पूजा विधान में वायु संबंधी विघ्नोंको दूर करने के लिए वायुकुमार देवको बुलाना इष्ट था, सो वायुकुमार को बुलाकर उन विघ्नोंको दूर करने केलिए कहा है, और यथा स्थान बैठनेके लिए कहा है, परंतु सोचनेकी बात यह है कि वह वायुकुमार देव किसीका नौकर तो नहीं है, जिनेंद्र भगवान् का वह भक्त होगा, परंतु एक श्रावकको क्या अधिकार है कि वह उसे आज्ञा देवे, इसलिए अन्य प्रतिष्ठाकारोंने जो विधिपूर्वक आदर के साथ उन देवोंको बुलानेका विधान किया है, वही सही है। इस ग्रंथकारको भी वह मान्य है, परंतु वे कारणवश स्पष्टीकरण नहीं कर सके।

इसी प्रकार आगे वास्तुकुमार, मेघकुमार, अग्निकुमार, नागकुमार देवोंका भी आव्हान किया हैं। यथास्थान बैठनेका संकेत किया गया हैं, अंतमे यह कहकर उपसंहार किया हैं कि–

इति जिनभक्तितत्पर वास्तुकुमार यथायोग्यस्थाने निवेशनाय पुष्पांजलि क्षिपेत् मंडपोपरि ॥

ऐसे जिनभक्तिमे तत्पर वास्तुकुमार देवताकू यथा योग्य स्थान का सन्निवेशनिमित्त वेदीमंडल ऊपरि पुष्पांजलि क्षेपणी।

इसी प्रकार कुमुदादि चतुर्द्वारपालकोंको भी बुलाकर यथास्थान उनकी स्थापना की गई है।

इस पर हम अधिक टीका टिप्पणी नहीं करना चाहते हैं। पाठक इसका भेद व रहस्य अच्छी तरह समझ सकते हैं।

आगे पृष्ठ ११५ जरा देखियेगा।

प्रतिष्ठाहोममें आहुति देते समय अंतमें यह मंत्र कहा गया है।

सम्यक्त्वके आसन्नभव्य निर्वाण पूजार्ह अग्नींद्र स्वाहा, सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि-मरणं भवतु।

इसी पीठिका मंत्रसे भी भलीभांति ज्ञात होती है कि होम विधान मे अग्नींद्र की आराधना आवश्यक बतलाई गई है।

यागमंडल की पूजामें चौवीस तीर्थंकरों को जो पूजा की गई है इसमें भगवान् पार्श्वनाथ की पूजा है, वह निम्नलिखित प्रकार है।

काशीपुरीशनृपभूपतिविश्वसेन,
नेत्रप्रियं कमठशठविखंडनेन,
धर्माहिराजविनुतम्भपूजनीयं,
वंदेर्चयामि शिरसा नतमौलिनोत: ॥५१७॥

यहांपर हमें सिर्फ यह बताना है कि भगवान् पार्श्वनाथके प्रति शठताके साथ कमठने जो उपसर्ग किया उसे धरणेंद्र पद्मावतीने दूर किया। इसे कुछ बंधु पंथमोहवश स्वीकार नहीं करते हैं। परंतु ग्रंथकर्ता आचार्य को यह मान्य था।

पृष्ठ २२२ में इंद्राणी या शची की स्थापना का विधान है। इंद्राणीकी स्थापना आदरपूर्वक होगी या अनादर पूर्वक? ग्रंथकारने उसकी स्थापना का प्रयोग नहीं बतलाया है, वह प्रयोग विधि अन्य प्रतिष्ठापाठसे हि जानना चाहीये, इसलिये

इस प्रयोगका स्पष्ट निषेध न हो तबतक उसका अभाव नहीं हो सकता है। अतः इसे स्वीकार करना चाहिये।

पृ. २३३ में जिनमातृकाओंकी पूजनका विधान करते हुए टीकाकार लिखते हैं कि तीन जगत् के स्वामी इंद्रधरणेंद्रादिकरि प्राप्त है पूजा को अधिकार जिनि ऐसी सर्वजननी अंबा जे है, ते इहां यज्ञभूमिमें आयकरि यज्ञका कृत्यते आदर करि ग्रहण करो, काष्ठकी मंजूषा में ही माताका कार्य मे कल्पना करो, ऐसे चोईस जिनराज की माताका नाम पुण्यवान् यजमान करे तथा स्मरण करें ॥७१८॥७१९॥

आगे गर्भावतरण कल्याण मे श्री आदि आठ दिक्कन्यका देवियोंका उल्लेख है, जिन देवियों का त्रिलोकीनाथ भगवान् की माताको सेवामें नियोग है उसमें कुछ न कुछ अधिक योग्यता होनी चाहिये, वे सेवा करती हैं। इसे ग्रंथकारने स्वीकार किया है, परंतु उन्हे बुलाकर आदरपूर्वक यथास्थान बैठालनेको अनुदारता क्यों? इसमें सम्यक्त्व हानिका कोई प्रश्न ही नहीं है।

पृष्ठ नं. २४९ मे जन्मकल्याण के अवसरपर दिक्पालक देवों का उल्लेख इस प्रकार आया है।

दिक्पालाः स्वस्वदिक्षु स्थितिमधुरवनीं व्यामभिव्याप्य भक्त्या,
शक्राग्निप्रेतदेवासुरवरुणमरुत् श्रीदशर्वैकुनागाः।
सर्वे सर्वज्ञभक्ताः अधिकृतनियताश्चापरे द्वादशेंद्राः
संख्यातीताः सुरा वै निजवपुषि परानंदमाजग्मुरिष्टौ॥

जयसेनप्रतिष्ठापाठ ॥७६८॥

अब वहां दिक्पालदेव पृथ्वीने तथा आकाशने व्याप करि भक्तियुक्त होय इंद्र अग्नियम नैऋत्य वरुण पवन कुबेर ईशान

धरणेंद्र अर चंद्र अपनी अपनी दिशामें स्थिति करते भये; सर्वं सर्वज्ञ देवके भक्त अर अनादिकालतें अपना नियोगमे निपुण तथा अन्य भी द्वादश इंद्र और असंख्यात देव देवांगना उस उत्सवमे अपना शरीर में परमआनंदने प्राप्त होते भये ॥७६८॥

इस श्लोकमे दो पद विशेष ध्यान देने योग्य हैं। जिसका उल्लेख टीकाकारने भी किया है। एक तो सर्वे सर्वज्ञभक्ताः अर्थात् ये सर्व जिनेंद्र भगवंत के भक्त हैं, दूसरी बात अधिकृत रूपसे अनादि कालसे अपने अधिकारमे नियत हैं, सो यह श्रेय अन्य देवोंको नहीं मिल सकता है, इन में विशेष योग्यता होनेसे ही उस स्थानमे आकर ये जन्म लेते है, एवं तीर्थंकरोंके पंच कल्याणक अवसरोमे सेवा करते हैं, ऐसी स्थितिमे आदर पूर्वक उन्हे बुलाकर अर्घ्य चढानेमे आपत्ति क्यों होनी चाहिये ?

परिनिष्क्रमण कल्याण के प्रकरणका अवलोकन कीजियेगा। पृ. नं. २६० मे लिखा है।

पूर्वं लौकांतिका देवाः कल्प्या अष्टौ सुबुद्धयः
श्रुतांबुनिधिपारज्ञाः धीराः सदुपदेशने।

जयसेन प्रतिष्ठापाठ ॥७९९॥

इहां पूर्व आठ संख्यावाले सुबुद्धि अर शास्त्रसमुद्रके पारगामी अर समीचीन उपदेशमे धीरवीर ऐसे लोकांतिक देव कल्पना करने योग्य है ॥७९९॥

इस श्लोकमे सुबुद्धि, शास्त्रसमुद्रके पारगामी और समीचीन उपदेशमे धीरवीर ये तीन पद महत्वके हैं, इससे इन लोकांतिक देवोंका सम्यग्दृष्टि होनेमे कोई संदेहकी बात नहीं है। वैसे भी ये ब्रह्मलोक स्थित ब्रह्मर्षि लौकांतिक देव एक भवाव-तारी होते हैं, इनका वर्णन करते हुये आचार्य पूज्यपाद निरूपण करते हैं कि,–

"सर्वे एते स्वतंत्राः, हीनाधिकत्वाभावात्, विषयरतिविरहा देवर्षयः, इतरेषां देवानामर्चनीयाः चतुर्दशपूर्वधराः, तीर्थंकर निष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्याः, अर्थात् -

ये सभी लौकांतिक हीनाधिकता न होनेसे स्वतंत्र, विषय रति नहीं होनेसे देवर्षि, इतर देवोंके लिए पूज्य, चौदह पूर्व शास्त्रोंको जाननेवाले एवं तीर्थंकरोंके परिनिष्क्रमण कल्याण के अवसरपर उपदेशके नियोगको प्राप्त हैं।

इसीलिए इस ग्रंथमे कहागया है कि, -

इत्युक्त्वा लौकांतिकदेवोपरि पुष्पांजलि क्षिपेत् ऐसें लौकांतिक देवोपरि पुष्पांजलि क्षेपो। ग्रंथकारने भी पुष्पांजलि क्षेपणकर उनका आदरका करनेका ही विधान किया है, अन्य ग्रंथकारोंने स्पष्ट शब्दोंमें उसका आदर किया है, इसमें क्या आपत्ति है। पुष्पांजलि भी ऐसी कोई सस्ती चीज तो है नहीं, जिसे चाहे जहां इधर उधर उपयोग किया जाय, वह भी योग्य व्यक्तियोंके विषयमें ही प्रयुक्त होसकती है।

लौकांतिकदेवोंकी योग्यता भी महान है। पृष्ठ नं. ३०५ मे निम्नलिखित वाक्य देखियेगा-

ओं ह्रीं सकल यज्ञाधिकृत जिनदेव गुरुश्रुतादिसकलदेवता भ्योऽर्घम्, इसका अर्थ टीकाकारने लिखा है कि ओं ह्रीं सकल यज्ञमे आहूत जिनमुनिश्रुत आदि सकल देवताके लिये अर्घ, देवगुरु और शास्त्रका अंतर्भाव होनेके बाद आदि पदसे अन्य देवता क्यों लागई ? आदि पदका यहां क्या अर्थ है? अर्थात् इस प्रतिष्ठाके प्रकरणमे समय समयपर जो आदरपूर्वक जिन देवी देवताओंका आव्हान किया है, उन सबको अर्घप्रदान करें।

इस प्रतिष्ठापाठके संबंधमें इतना विस्तृत लिखनेका यह कारण है कि लोग बहुत दावे के साथ कहते हैं कि यही एक प्रतिष्ठापाठ शासनदेवतावों के संबंधसे रहित हैं। हमने उपर्युक्त प्रकरणों से सिद्ध किया है कि आचार्य जयसेनने भी उन शासनदेवतावों को भुलाया नहीं है, परन्तु कुछ कारणवश क्षेत्र कालके प्रभाव से किसीके दबावसे दबी आवाज में उनका समर्थन किया है। इसलिए कोई भी सज्जन प्रतिष्ठापाठ में शासन देवी देवतावोंका समादर नहीं किया गया है,यह कल्पना न करे।

इस प्रतिष्ठापाठके अन्त में कहा है कि –

जिनांघ्रिस्पर्शनात्पूतमाशिषं परिगृह्य च ।
आचार्यं पूजयेद्भक्त्या यथायोग्योपचारतः ॥

जयसेन प्रतिष्ठापाठ ॥६१५॥

पीछे जिनेन्द्रका चरणस्पर्श तै पवित्र पुष्पाशिमालाने ग्रहण करे, अर आचार्य ने भक्तिसेती पूजें, यथायोग्य उपचारसे ॥६१५॥

(इससे पुष्पमालाको जिनेन्द्रचरणोमें अर्पण करनेका विधान सिद्ध होता है, परन्तु इस प्रकरणमें इसका प्रयोजन नहीं है, हमारे ग्रंथ का विषय स्वतंत्र है। परन्तु आनुषंगिक रूपसे निर्देश कर दिया है।)

विसर्जनमें कहा गया हैं –

सर्वे येऽपि समाहूता जिनयज्ञमहोत्सवे ।
तान्सर्वान् संविसृज्येत भक्तिनम्रशिराः पुनः ॥६१६॥

अर सर्वजन श्री यज्ञ विधान में आहूत है, तिन कूं विसर्जन करै अर भक्ति करि अपना मस्तक कूं नमावे ॥६१६॥

ये सर्वजन कौन ? किसका विसर्जन करे ? यदि देव गुरु शास्त्रोंका ही विसर्जन करनेका हो तो ग्रंथकार स्पष्ट कह देते,

परन्तु उन्हे उतना ही इष्ट नहीं था,वे और भी देवी देवतावों के आव्हानका संकेत इस श्लोकों से करते हैं, उन सब का विसर्जन करने का विधान इससे करते हैं, और उनको भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर नमस्कार करने का संकेत भी करते हैं। इससे विषय स्पष्ट होजाता है।

आज-कल एक नई विचार धारा भी प्रवाहित होरही है कि तीर्थंकर अथवा देवगुरु शास्त्रों का आव्हान व विसर्जन नहीं किया जाता है, क्योंकि वे न आते हैं और न जाते है, (A) ऐसा कुछ लोग कहते हैं, उन लोगों के मतानुसार भी उपर्युक्त विसर्जन फिर किसका? स्पष्ट है कि देवी देवतावोंको जो आव्हान किया था उन्हीका विसर्जन है। अर्थात् देवी-देवतावों का आव्हान उनको मान्य है, इस विसर्जनका यह अर्थ लिया जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं हैं,शासनदेवी देवतावोंका विरोध करनेवाले लोगोंकी मान्यता इससे सिद्ध नहीं होपाती है।

अब हम इस प्रतिष्ठा पाठकी प्रशस्ति के आधारसे रचना व काल के संबंधमें थोडा विचार करते है, जिससे स्वाध्याय प्रेमी बंधुवों को विषय समझने में सुविधा होगी।

अथ प्रशस्तिः

कुंदकुंदाग्रशिष्येण जयसेनेन निर्मितः।
पाठोयं सुधियां सम्यक् कर्तव्या यास्तु योगतः ॥९२३॥

(A) यद्यपि हमें यह विधान मान्य नहीं है, तथापि आज लोग जो भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं, उससे उन्हीं के मन्तव्यसे नई आपत्ति खडी होजायगी, इसे बतलाने के लिये हमने यह लिखा है,इससे सरल विषयको स्वीकार करना अच्छा हैं।

अर आचार्य गुरु परिपाटी कहे हैं - कि मैं कुंदकुंद नाम महान् मुनिवरका पट्टधारी शिष्य जयसेन नामकने रचा, ऐसा यह पाठ सम्यग्बुद्धिधारीनिके योगसे करने योग्य है ।।९२३।।

इस से आचार्य जयसेन कुंदकुंद आचार्य की परंपरामें हुए हैं, ऐसा ज्ञात होता है। कुंदकुंद आचार्य के साक्षात् शिष्य नहीं है, तथापि कुंदकुंदकी आम्नायपरंपरा उन्हे मान्य हैं।

आगे अपने देशका वे परिचय देते है।

श्री दक्षिणे कुंकुणनाम्नि देशे
सह्याद्रिणा संगतसीम्निपूते
श्रीरत्नभूध्रोपरि दीर्घचैत्यं
लालाट्टराज्ञा विधिनोर्जितं तत् ।।९२४।।

श्रीमान् दक्षिण दिशामें कुंकुणनाम (कोंकण) देशमें सह्याचल करिसमीप सीमावारा पवित्र श्रीरत्नगिरी(रत्नागिरी) ऊपरि जिनेन्द्र चंद्रप्रभ का बडा उन्नत चैत्यालय लालाट्टनाम राजाका बनाया हुआ है ।।९२४।।

अर्थ स्पष्ट है, दक्षिणभारतांतर्गत कोंकण प्रांतमें रत्नागिरी आज भी विद्यमान है, वहांपर चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर भी विद्यमान है, इसलिए विशेष विचार की आवश्यकता नहीं हैं।

आगे लिखते हैं कि, —

तत्कार्यमुद्दिश्य गुरोरनुज्ञा-
मादाय कोलापुरवासि हर्षात्
दिनद्वये संलिखितः प्रतिज्ञा-
पूर्त्यर्णमेवं श्रुतसंविधत्ति ।।९२५।।

अर वहां प्रतिष्ठा होने का उद्देश करि गुरु जो कुंदकुंद स्वामी (?) तिन की आज्ञा पाय कोल्हापुर नगर में रहनेवाले

राजाका हर्ष ते प्रतिज्ञापरिपूर्तिनिमित्त इस शास्त्र का रचनेका विधान है।

इस श्लोक को देखनेपर विषयपर अच्छा प्रकाश पडता है, श्लोक में गुरू की आज्ञासे इतना ही पद पडा है, परंतु टीका-कारने कुंदकुंद का नाम उसमें जोडदिया है। अब रही बात रचना की, दो दिनमे इसकी रचना कोलापुरवासी राजाकी प्रतिज्ञापूर्ति के लिए को गई।

विचारणीय विषय यह है कि उस समय अन्य प्रतिष्ठा विधायक शास्त्र प्रचलित नहीं थे क्या? दो दिन में इस प्रतिष्ठापाठ को बनाने की आवश्यकता क्यों पडी? दो दिन में अगर यह शास्त्र लिखा गया है तो पूर्वाचार्यों-के ग्रंथके आधार से लिखा गया है, या जयसेन आचार्य के स्वकपोलकल्पनासे लिखा गया है? जैनाचार्यों की वह परपरा नहीं हैं। वे कभो भो स्वतंत्र-स्वकपोल कल्पनासे कोई भी ग्रंथ रचना नहीं कर सकते हैं। दो दिन में इतने बडे ग्रंथ की रचना की है तो उसमे कुछ न्यूनता का आभास होसकता हैं या नही? सबसे बडा प्रश्न तो यह खड़ा होजाता है कि अन्य सहितावों के सद्भाव में दो दिन में इसके रचना करने की गडबडी क्यों हुई? यह सब प्रश्नार्थक आज भी उत्तररहित है।

स्व. डॉ. उपाध्ये के कथनानुसार यह जयसेन नरेन्द्रसेनकी परंपरा मे हुए है, नरेन्द्रसेन के द्वारा रचित एक प्रतिष्ठापाठ है, जिसमे शासनदेवतावों के समादरका विधान है। जयसेन यदि उसी परंपरा में हुए तो अपनी गुरु परंपराके अनुसार ही प्रतिपादन करते, उस परपराके विरुद्ध प्रतिपादन करनेका कोई कारण नहीं है।

हम अधिक ग्रंथोंका इसलिए उल्लेख नहीं करते है कि सारे जैनागम इस विषय से भरा पडा है। जो शासन देवता के समादर का विरोध करते हैं, उनकी एक ही युक्ति हो सकती है कि ये सब ग्रंथ अप्रमाण है। हमारा कहना है कि किन किन ग्रंथों को आप अप्रमांण घोषित करते है ? कृपया सूची प्रकाशित कीजिये, आप जिनको प्रमाण घोषित करते हैं, उनमें ही हम विषय का प्रतिपादन दिखादेंगे, मात्र चरणानुयोग या प्रथमानुयोग संबंधी वह आगम हो।

दूसरी बात इतनी लंबी चौडी परंपराके सभी ग्रंथों को अप्रमाण करार देनेसे क्या आपत्ति उपस्थित होजायगी वे स्वयं विचार करे, फिर तो प्रमाणभूत जैनागम कुछ शेष नहीं रहेगा।

इस प्रकरण से मूर्ति निर्माण की परंपरा व शासनदेवों की मान्यता की परंपरा हमारे आगमो में क्या रही, और किस प्रकार कहां हमारे आगमो मे उसका उल्लेख है, इस बात का अच्छीतरह स्पष्टीकरण होजाता है।

इसके अलावा वे देव सम्यग्दृष्टी होते हैं। हम सम्यग्दृष्टि हैं या नहीं इसकी शंका ही है। हम सम्यग्यदृष्टि होनेका प्रदर्शन करते हैं। इसलिए उनका आदर सत्कार यथायोग्य करनेमें कोई हानि नहीं है। अपने माता पिताका हम आदर करते हैं। विद्या गुरु का आदर करते हैं। तीर्थंकरोंके समान जानकर उनका आदर नहीं होना चाहिये।

इसके लिए हमने सोमदेव यशस्तिलक वगैरे का प्रमाण दिया है, आजसे हजार वर्ष पहिले भी शासनदेवताओंका आदर होता था, इसकेलिए यही प्रमाण पर्याप्त है।

[३] शासनदेव सम्यग्दृष्टी होते हैं।

सोधर्मेंद्र, लोकपाल, शची महादेवी, ईशानेन्द्र, लौकांतिक व सर्वार्थसिद्धिके देव वहांसे च्युत होकर मानवपर्याय को प्राप्त कर मुक्तिको जाते हैं। जब उनको दूसरे भवसे मुक्ति निश्चित है तो वे सम्यग्दृष्टि जीव हैं। *

सम्यग्दृष्टि जीव ही जिनेन्द्र की भक्तिसे आराधना कर सकते हैं। पंचकल्याणक अवसरो में उपस्थित होकर वे देवेन्द्रादिक तीर्थंकरों की अनवरत सेवा करते हैं।

उस सोधर्मेंद्र के द्वारा अवधिज्ञानसे उनकी योग्यताको जानकर उन देवी देवतावों को शासन देवता के पदमें नियुक्त किया जाता हैं, वे निश्चित ही शासनभक्त हैं।

तीर्थंकरो के तीर्थंकर मंदिरों को विविध उपसर्ग के अवसरपर शासनदेव रक्षा करते हुए आये हैं। जैनधर्म की प्रभावना को विशेष रूपसे वे करते आये हैं। एव उसे चाहते हैं, उनकी नियुक्ति परमागममें शासन की रक्षा के लिये देवेंद्रने की हैं। सो निश्चित रूपसे वे सम्यग्दृष्टी जीव हैं। उनके अन्दर जबतक सम्यग्दर्शन न हो तबतक देवेन्द्र शासनकी सेवा के लिए उनकी नियुक्ति नही कर सकता है।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से स्पष्ट है कि तीर्थंकरके दक्षिण वाम पार्श्व मे रहने का उन्होने भाग्य प्राप्त किया है, इससे वे निश्चित रूपसे सम्यग्दृष्टि जीव हैं यह समझना चाहिये। वे दूसरे भव से मुक्तिको जाते हैं।

---

* सोहम्मो वरदेवी सलिगदिवाय लोगपालो य
लोयंतिय सव्वट्ठो तदो चुदो णिव्वुदिं जंति
— त्रिलोकसार

[४] शासनदेवतावोंके प्रभावके कुछ उदाहरण

जैनागम मे सर्वत्र इस विषय के उदाहरण उपलब्ध हैं। परन्तु जहां जिस क्षेत्रमें सातिशयता है, वहां तो अवश्य ही इन देवी देवतावों का प्रभाव देखनेमे आता है।

आचार्य भूतबली पुष्पदंत

आचार्य धरसेनने भूतबली व पुष्पदंतको मंत्र सिद्ध करने के लये दिया, परंतु एक में एक बीजाक्षरको न्यूनता ओर एक मंत्र मे एक बीजाक्षरको अधिकता थी, उन मंत्रों को अधिष्ठात्री देवताये प्रकट हो गई, प्रार्थना करने लगी कि हम आप की क्या सेवा करें।

उन साधुवोने कहा कि हमें आपसे कोई काम नही है। परन्तु देवतावो के आकारमें यह विकृति क्यों ? जिसमे एक अक्षर की न्यूनता थी वह देवता एकाक्षिणीं (कानी) थी, जिसमे एकाक्षर अधिक था वह देवी तीन आंखवाली थी, फिर दोनोने बीजाक्षरको ठीक समझकर जप किया तो दोनो देवीया सुंदर रूपमें उपस्थित हुई। गुरुसे दोनोंने निवेदन किया, वे ही धरसेन आचार्य के चूर्णीसूत्रका विस्तृत करनेमें समर्थ हुए।

इससे मालुम होता है कि बीजाक्षरोंमें अचित्य शक्ति है। देवीदेवता उन बीजाक्षरों के प्रभाव से वशीभूत होते हैं। इच्छित फल को देते हैं।

आचर्य कुंदकुंद

आचार्य कुंदकुंद देवने गिरनार पर्वतपर विधर्मियों से शासनदेवीकी सहायतासे किस प्रकार विजय को प्राप्त किया यह सर्वजन विदित है। उसके चरित्रसे इस विषयका जाना जा सकता है।

आचार्य समंतभद्र

आचार्य समंतभद्र भस्मक रोगसे पीडित होने पर काशी गये, उन्होंने महादेवजीको भोग लगाने की घोषणा की, स्वयं चारित्र भ्रष्ट होकर खाते थे, परन्तु जब उनका यह कार्य मालूम हुआ तो उन्होंने निःशल्य होकर अपना परिचय दिया। (१) राजा शिवकोटिने आज्ञा की कि,कल सुबह ६ बजे तुम्हारा फैसला होगा, यां तो तुम्हें शैवमत को स्वीकार करना पडेगा अथवा मरण दंड के लिये सिद्ध होना पडेगा।

आचार्य समंतभद्र रात्रिभर आकुलता विकलता में रहे, भय इसका नहीं था कि सुबह मरण दंड मिलेगा। इसका भय था कि मैं चारित्र से भ्रष्ट हो चुका हूं। अब दर्शनसे भी भ्रष्ट होना पडेगा, चारित्रसे भ्रष्ट होते समय ही मुझे गुरुदेव सल्लेखना देते तो क्या बिगडता? प्रातः थोडीसी आंख लगी, ज्वालामालिनीदेवी आई। कहने लगी कि वत्स! दुःख मत करो, तुम्हारा कार्य होजायगा।

स्वयंभूस्तोत्रकी रचना की, भगवान् चंद्रप्रभ जिनका स्तोत्र करते समय –

चंद्रप्रभं चंद्रमरीचिगौरं चंद्रं द्वितीयं जगदेककान्तम्
वंदेभिवंद्यं महतामृषींद्रं जिनं जितस्वांतकषायबंधं

इस स्तुतिकी रचनामें उस शिवपिंडीमें चंद्रप्रभ भगवान् की दिव्य तेजपुंज मूर्ति प्रकट होगई। (२)

---

(१) कांच्यां नग्नाटकोहं मलमलिनतनुर्लांबुसापांडुपिंडः
पुंड्रोड्रे शाक्यभिक्षुः दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट्
वाराणस्यामभूवं शशधरधवलः पांडुरागस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रंथवादी।

(२) आजभी फटे महादेवके नामसे काशीमें पंडे लोग उस महादेवको दिखाते हैं।

इस चमत्कार को देखकर राजा शिवकोटि भी आश्चर्यचकित हुआ। चार हजार शिवभक्तों के साथ जिनभक्त हुआ। अंतमें तपश्चर्या करते हुए आचार्य शिवकोटिके नामसे प्रसिद्ध हुए एवं भगवतीआराधना ग्रंथ की रचना की।

आचार्य अकलंक

अकलंक निष्कलंक चरित्र प्रसिद्ध है, बौद्ध गुरुवोंके द्वारा स्थापित तारादेवी की खबर आचार्य अकलंकने शासनदेवी की सहायतासे ही ली एवं जिनशासन की अपूर्व माहात्म्यको बताया।

न्यायशास्त्रवेत्ता विद्यानंदि

आचार्य का जन्म जैनेतर कुल में हुआ, न्यायशास्त्र के अद्वितीय वेत्ता थे, मात्र जिनमंदिरसे जानबूझकर बहुत दूर से निकलते थे। कर्म-धर्म संयोगसे एक पार्श्वनाथ मंदिर के निकटसे जानेका मौका मिला, कोई स्वाध्यायप्रेमी देवागम स्तोत्र का पठन कर रहा था, हेतुके लक्षणमें सन्देह पैदा हुआ, रातभर अस्वस्थ रहे, विद्वानोंका यही काम है। थोडी देर झपकी लगी तो प्रातःकाल उठकर मन्दिरमें पहुंचे। भ. पार्श्वनाथ की फणामणि में लिखा हुआ था।

> अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
> नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्?
> अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पंचभिः।
> नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पंचभिः

जहां अन्यथानुपपन्नत्व है, वहां हेतुका त्रैरूप्य और पांचरूप्यसे क्या प्रयोजन है। जहां अन्यथानुपपन्नत्व नहीं है वहांपर त्रैरूप्य और पांचरूप्य का प्रयोजन क्या है? इसलिए जैन सिद्धांतमें हेतुका लक्षण अन्यथानुपपन्नत्व माना गया है।

तत्काल सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई,जैनधर्म की दीक्षा ली, आचार्य विद्यानंदिने जैनधर्म प्रभावक अनेक कार्य किये। अष्ट सहस्री,आप्तपरीक्षा,श्लोकवार्तिक आदि विद्यानंदिकी यह देन है।

इसी प्रकार अनेक आचार्योंने शासनदेवों की सहायता से जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की है। एवं उस पवित्र धर्मके प्रभावको लोकमे उपस्थित करसके हैं।

अग्निपरीक्षा व सीतादेवी

सीतादेवीके पुत्र लव-कुश आकर वीरताके साथ रामसे मिलते हैं। सीतादेवी भी आनन्दसे चरणछूकर रामदेवके बगलमे खडी होती है। परन्तु रामचन्द्र कहते हैं कि प्रिये! दूर खडी रहो, तुम्हारी परीक्षा लेना अभी बाकी है। तुम घोर अपवादसे घिरे हो, सीतादेवीको मस्तकपर वज्रका पहाड गिर गया हो जैसा प्रकार दुःख हुआ, तत्काल संसारसे विरक्ति हुई, यदि औरोंको मेरे चरित्रमें शंका हो तो भले ही हो, परन्तु मेरे पतिदेवको भी शंका है, विरक्तिपूर्ण हृदयसे ही कहने लगी कि परीक्षा लीजिये पतिदेव !

रामचन्द्रने तत्काल कहा कि अग्निपरीक्षा होगी। सीतादेवी अग्निप्रवेश कर परीक्षा देगी। शीलकी परीक्षाके लिये तृणकाष्टसे जाज्वल्यमान अग्नि में वह प्रवेश करनेवाली हैं। ❁

❁ कर्मणा मनसा वाचा रामं मुक्त्वा परं नरं
समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम ॥२५॥
यद्येतदनृतं वच्मि तदा मामेष पावकः।
भस्मसाद् भावमप्राप्तामपि प्रापयतु क्षणात् ॥२६॥
पद्मपुराण १०५

उससमय मेघकेतुनामक देव अपने इन्द्रके साथ सकलभूषण केवली के केवलज्ञान कल्याणमें जारहा था, इन्द्र की आज्ञासे मेघकेतु वहां रुक गया, सीतादेवीके अग्निप्रवेश करनेपर उस अग्निको जलमय बनाकर सीतादेवीको उस सरोवरमें सिंहासन पर बैठा लिया । इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवोंके प्रति शासनदेव भी अनुग्रह करते हैं एवं धर्मका प्रभाव वहांपर बताते हैं ।

अकिवाटके विद्याधरस्वामी

दिल्ली दरबारमें चर्चा हुई कि आप जैन लोग अपने धर्म की उच्चताको सिद्ध करो, नहीं तो तुम जैन सभी मुसलमान बन जावो, नहीं तो मरणदंडके लिए तयार होजावो । मुगल साम्राज्य था, वहांपर विरोधमें कौन बोल सकते हैं ।

दिल्लीके जैनबन्धु कोल्हापूर भट्टारकजीके पाय आये । कोल्हापूरके भट्टारकने उन्हें अकिवाट विद्याधरजीके पास भेजा जो मन्त्रतन्त्रमें प्रविण थे । उन्होने दिल्लीके जैन बन्धुवोंसे सब प्रसंग सुना, और कहा कि घबरावो मत, जो भवितव्य होगा सो होजायगा ।

दिन बीतनेमें देरी नहीं लगती, विद्याधर दिल्ली जानेका नाम नहीं लेते हैं । जैनबन्धु घबरा रहे हैं, आखिर छह महिनेमें एक दिन बाकी रहा, तब फिर जैनबन्धुवोने गिडगिडाया, गुरुदेव, कल हमने दिल्लीमें सिद्ध नहीं किया कि हमारा जैन धर्म श्रेष्ठ है तो हमारे बालबच्चोंपर बेलन फिरैगा,तब भी उनका उत्तर निश्चित था कि घबरावो मत !

रातको एक दरीपर सोये हैं । प्रातः उठते समय दिल्लीमें है, गुरुदेव सामने ही हैं । गुरुदेव पालकीपर चढकर दरबारमें गये परन्तु पालखी ढोनेवाला कोई नहीं है । दरबारमें जाकर भी अन्तरिक्षमें आधाररहित खडे हैं ।

मुगल बादशहाको यह देखकर आश्चर्य हुआ। जैनधर्मकी जीवदयाके रूपमें, जीवके अस्तित्वके संबन्धमें अनेक प्रश्नोत्तर दरबारमें हुए, विद्याधरने समर्पक उत्तर दिया। मुगल बादशाह उनके उत्तरसे बहुत प्रभावित हुआ।

राजाने प्रार्थना की कि रानिवासमें रानियोंको भी आप-सरीखे महपुरुषोंका दर्शन हो, यह हमारी प्रबल इच्छा है। परन्तु विद्याधर नग्न थे, उन्होने नग्नअवस्थामें भी वहांपर जानेकी इच्छा प्रकट की, परन्तु बादशहाका बहुत बडा आग्रह रहा कि आप थोडी देरके लिए कपडा धारण करलेवें। उस आग्रहके वश होकर विद्याधरने कपडे पहन लिये। तबसे भट्टा-रकोमें अन्य अनेक आचरण मुनियोंके समान होनेपर भी कपडा पहननेकी प्रथा चालू होगई।

विद्याधर भट्टारकने मन्त्रसिद्ध किया था। मन्त्रकी अधि-ष्ठात्री देवीकी आराधना की थी,तभी तो वह उनके इष्टार्थको तृप्त करती थी।

इस प्रकारके उदाहरण बहुतसे पडे हैं। लोग विश्वास करे या न करे मन्त्रसाधनसे एवं भगवन् जिनेन्द्रको भक्तिपूर्वक उपासनासे ये सभी देवी-देवतायें वशमें होती हैं। एवं उस भक्त के इष्टार्थ को पूर्ण करती हैं। (*)

आज भी इस पचम कालमें यत्र-तत्र इन देवीदेवता-वोंका चमत्कार देखनेमें आता है। श्री महावीरजी, पद्मप्रभुजी, हुमच पद्मावती, सिंहनगदे, आदिस्थानोंमें यह शासनभक्त व्यंतर

(*) विघ्नौघाः प्रलयं याति शाकिनीभूतपन्नगाः
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥
दर्शनपाठ

देवदेवताओंकी भक्तिपूर्वक उपासना कर अपने वशमें कर लेते हैं। और अकिर्वाटके विद्याधरके समान वे शासनदेव अविश्वासपूर्ण चमत्कार दिखानेमें समर्थ हो जाते हैं।

समादरके लिए अन्य ग्रन्थोंका प्रमाण

हरिवंशपुराण सर्ग ४३। १४२। १४३

करुणावानसौ योगी योगं संहृत्य सस्थितः।
क्षेत्रपालकृतं ज्ञात्वा समग्रं विनयान्वितम् ॥
क्षम्यतां यक्ष दोषोयमनयोरनयोद्भवः।
कर्मप्रेरितयोः प्रायः कुरुकारुण्यमंगिनोः ॥

करुणाके धारक मुनिराज अपना योग समाप्त कर जब विराजमान हुए तब उन्होंने यह सब क्षेत्रपालके द्वारा किया जानकर विनयपूर्वक बैठकर क्षेत्रपालसे कहा कि यक्ष यह इनका अनीति से उत्पन्न दोष क्षमा कर दिया जाय, कर्मसे प्रेरित इन प्राणियोंपर दया करो १४२।१४३

हरिवंश पुराण ९। १३१

योऽसौ विद्याधराधारो विजयार्द्ध इतीरितः
सोपि ताभ्यां ततोलब्धः किन्न स्याद्गुरुसेवया।

विद्याधरोंका निवास भूत विजयार्ध नामका पर्वत है वह भी उन दोनोंने (नमि-विनमि) धरणेंद्रसे प्राप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि गुरु सेवासे क्या नहीं होता है?

हरिवंश पुराणके अन्तमें यह कहा गया है कि सज्जनोंके हितैषी जो शासनदेव और शासनदेवियां सदा चौबीस तीर्थंकरोंकी सेवा करती हैं उनसे भी मैं याचना करता हूं कि वे सदा जिनशासन के निकट रहे। चक्ररत्नको धारण करनेवाले अप्रति चक्र देवता तथा गिरिनार पर्वतपर निवास करनेवाली सिंहवाहिनी अंबिकादेवी जिस जिनशासनमें सदा कल्याणके लिए सन्निकट रहती है उस जैनशासनपर विघ्नों का प्रभाव कैसे हो सकता है ?

हितके कार्यमें मनुष्योंको विघ्न उपस्थित करनेवाले जो ग्रह, नाग, भूत, पिशाच, राक्षस आदि हैं वे जिनशासन के भक्त देवोंके प्रभावसे शान्तिको प्राप्त हो जाते हैं।

हरिवंश पुराण

मंगलाष्टकमे इन शासनदेवी देवताओंका स्मरण व उल्लेख किया गया है।

अनेक देवी देवता अष्ट मंगल द्रव्य आदि लेकर तीर्थंकरोंके पंचकल्याणके समय सेवा करती हैं।

प्रतिष्ठा सारोद्धार ग्रन्थमें इन शासन देवदेवियोंका आव्हान है और जिनबिंब निर्माण विधान किया गया है उसे भी देखना चाहिये।

पांडव पुराणमें शासनदेव देवियोंका आव्हान किया गया है।

वसुनन्दि प्रतिष्ठामे मूर्ति निर्माण करनेका विधान देखना चाहिये।

इसी प्रकार प्राचीन मूर्तिया जहां तहां भी उपलब्ध हैं वे सब यक्ष यक्षिणीयोंसे सहितही होती हैं।

१० वे शतकके पहिलेकी मूर्तियां जितनी भी मिलती हैं उनमें यक्ष यक्षी सहित ही मूर्तियां मिलती हैं। इससे यह प्रथा बहुत प्राचीन है यह स्पष्ट मालूम होता है।

रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराणमें मुनिसुव्रतनाथ के समय जो जिनमन्दिर थे उनका वर्णन है। उसमें जो मन्दिर थे उनमें शासनदेवतायें थीं इसका विवेचन है।

मल्लिषेणकृत पद्मावती कल्प, ज्वालामालिनी कल्प व जिनानुशासनमें जगह जगह पर शासनदेवी देवताओंका आव्हान है।

इसी प्रकार दिगम्बरोंमें ही नहीं श्वेतांबर आगम में भी सर्वत्र शासनदेवी देवताओंका आह्वान है। इसलिए केवल दिगम्बर सम्प्रदायको ही यह मान्य नहीं है। महावीर भक्त अन्य शाखाको भी यह मान्य है यह स्पष्ट हुआ। आचार्य भद्रबाहु व स्थूलिभद्रसे उपदेश इसका मिला है यह स्पष्ट है।

इसलिए विरोधियों द्वारा उपस्थित युक्ति विचार करने योग्य नहीं है। आगम तो उनके पास है ही नहीं।

जैनागममें अनेक स्थलोंपर शासन देवताओंका उल्लेख है। उनके चमत्कारोंका उल्लेख है, साधुओंके द्वारा भी उनकी विनय की गई, इसका भी उल्लेख है। अनादरका उल्लेख कहीं भी नहीं है।

(६) विरोधियोंकी युक्तियां

विरोधीगण शासन देवताओंका अनादर करनेवाले बार २ लोगोंको बहकाते हैं कि वीतराग जिनेन्द्रदेव ही पूज्य हैं। शासनदेवता पूज्य नहीं हैं।

पूजा शब्दके अर्थको प्रतिपादन कर हमने इस ग्रन्थमें अच्छी तरह सिद्ध किया है कि जिनेन्द्रकी पूजा व शासनदेवताओंकी पूजा एक प्रकारसे नहीं होती है। मन्त्र विधि, प्रयोग आदि सभी भिन्न हैं। शासन देवताओंके समादरका विधान है। सो इस सम्बन्धमें प्रमाणको ध्यानमें लिये हुए विरोधियोंकी युक्तियां किसी कामकी नहीं हैं। विरोधियोंका जोर आचार्य समन्तभद्रके श्लोकपर है। तथा आहूता ये पुरा देव। इस विसर्जन श्लोक पर हैं किसीसे भी उनको यथा योग्य आदरसत्कार करनेका निषेध नहीं होता है प्रत्युत: पुष्टी मिलती हैं।

(७) यह मिथ्यात्व नहीं है।

इसीसे अच्छी तरह सिद्ध होता है कि यह कार्य मिथ्यात्व नहीं है। अगर उन शासनदेवताओंसे हमने कुछ कामना की तो सम्यक्त्वमें बाधा देनेवाली देवमूढता हो सकती है। यदि कामना न कर उनका सत्कार किया जाय, तो हमारे सम्यक्त्वमें मलिनता नही आ सकती है। हमने उसके लिए भी भरपूर प्रमाण इस ग्रन्थमें दिया है। उसपर भी विचार करना चाहिये। सम्यक्त्व क्या है? मिथ्यात्व क्या है इसका विचार करनेपर अपने आप. विषय समझमे आवेगा कि यह मिथ्यात्व नहीं है।

(८) आनुषंगिक विषय.

शासनदेवताओंका आदर करना चाहिये। किसी भी हालतमे उनका अनादर नहीं करना चाहिये। इस संबंध

को लिखते हुए तत्संबंधी आनुषंगिक विषय व प्रश्नोंको उपस्थित किया है। [illegible]

प्राचीन प्रतिमायें यक्षयक्षीसहित ही क्यों होती हैं।

यक्षयक्षीरहित मूर्ति कौनसे शतमानसे पूजने लगी ?

मूर्तिशास्त्रका अध्ययन करनेपर हमें इस विषयका अच्छी तरह ज्ञान हो जाता है।

इस संबंधमें हम जैन प्रतिमाविज्ञान खण्ड १ श्री बालचन्द्र जैन एम्. ए. साहित्य शास्त्री उपसंचालक पुरातत्व संग्रहालय मध्यप्रदेश, जबलपुर द्वारा लिखित पढनेके लिए सूचना देते हैं जिसमें प्रतिमाके लक्षणके साथ मूर्ति कैसी होनी चाहिये इसका सचित्र उल्लेख है।

इसके अलावा देहूके श्री सेठ डुंगरमलजीने देहूसंबंधी शासनदेवता चमत्कारके विषयमें इस पुस्तकमें सम्मिलित करने के लिए जो लेख भेजा है वह पठनीय है।

श्री शासनदेवीदेवताके चमत्कार

संकलन– डूंगरमल सबलावत, बेडू

परम्परासे– आचार्योंने कहा कि–शासनदेवता जिनमार्ग के रक्षक हैं। मिथ्यामितियोंके द्वारा आई हुई आपत्तियोंको दूर करते हैं। जिनधर्म के प्रभावको प्रगट करनेवाले हैं मानतुंग, समन्तभद्र, कुन्दकुन्द, विद्यानन्दि; अकलंक; वादिराज सुदर्शन सेठ; महाकवि धनंजय आदि कितने महापुरुषोंकी अवसरानुसार सहायता की है इससे जाना जाता है कि वे धर्मात्मा पुरुषोंकी अवसरानुसार सेवा भी करते हैं। इसलिये सादर विनयके योग्य हैं।

प्रश्न—शासनदेवता किसलिये पूजे जाते हैं?

उत्तर—जिन शासनकी रक्षाके लिये। प्रतिष्ठादि कार्योंमें अनेक प्रकारके क्षुद्र देवादिकोंके द्वारा उपद्रवोंके किये जाने कि सम्भावना रहती है। इसलिये शासनदेवता उनके निवारण करनेके लिये नियोजित है। इसीसे जिनदेवके साथ-साथ उनका भी उनके योग्य सत्कार किया जाता है।

प्रश्न—जब वे शासनके रक्षक है धर्मात्मा है तो स्वयं रक्षा करेगे ही इसमें उनके पूजनेकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर—आवश्यकता क्यों नहीं जब प्रतिष्ठादि कार्योंमे छोटेसे छोटे का यथोचित सत्कार किया जाता है फिर यह तो जिन धर्मके भक्त और शासनके रक्षक हैं इसलिये अवश्य सत्कारके पात्र है। जो जैनी लोग छोटेसे छोटे और मुसल-मानादिकोंका मन माना सत्कार कर डाले और जो शास

जिनधर्मके भक्त तथा रक्षक हैं उनकी यह दशा। जो बिचारे थोडेसे सत्कारके लिये तरसे। यह तो हम भी कहते है कि यदि वे जिनधर्मके सच्चे भक्त होंगे तो जिनशासनकी रक्षा करेंगे ही, परन्तु यह तुम्हे भी तो योग्य नहीं; जो त्रैलोक्यनाथके साथमें रहनेवाले खास अनुचरोंका असत्कार कर डालें पुराणादिकोंमें देखो जगह जगह बात लिखी हुई मिलेगी कि अमुक राजाके दूतका अमुक नृपतिने यथेष्ट सत्कार किया किया क्या हम लोगोंमें भी यह बात अभी भी प्रचलित है कि हमारे यहां आये हुए अतिथिके सत्कारके साथमें उनके साथ में आए हुए भृत्यजनोंका सत्कार किया जाता है फिर जिनदेव के सेवक वर्गोंने ही क्या बडा भारी पाप किया है जिससे वे सत्कारके पात्र ही नहीं रहे।

जब प्रतिष्ठादि कार्य शासन देवताओं बिना भी चल सकते होते तो कहीं प्रतिष्ठादि विधियोंमें देखा नहीं जाता; क्या चक्रवर्ती सम्यकदृष्टि नहीं होते? क्यों उन्हे चक्ररत्नको पूजनादि करना पडता है। विद्यादिकोंके साधनमें क्यों देवताओंका आराधन किया जाता है? क्या वे सब जैन धर्मके पालन करनेवाले विद्याधर लोग मिथ्यादृष्टि होते थे? जैन मतमें नव देवता पूजने लिखे हैं उनमें जैन मंदिर भी गर्भित है। क्यों? जैन मन्दिर भी पत्थर और चूनोंका ढेर हैं? उसके पूजनसे क्या फल होगा। उसी तरह समवशरण तथा सिद्ध क्षेत्रादिकोंका भी पूजन किया जाता है यह क्यों? अरे तुम्हारे कथानुसार केवल जिनदेव ही पूजने चाहिये। कदाचित् कहीं यह कहना अनुचित है क्योंकि जिन मन्दिर समवशरण तथा सिद्धक्षेत्रादिकोंका जो पूजन करते हैं। उसका कारण

यह है कि उनमें जिन भगवान् विराजे हैं । अर्थात् यों कहीं कि—

सद्भिरध्युषिता धात्री पूज्या तत्र किमद्भुतम् ॥

अर्थात्—जिस जगह पर महात्मा लोग विराजते हैं अर्थात् जिस जगहसे वे निर्वाण स्थान को पाते हैं वह उन्हींकि माहात्म्यादिका सूचक है इसलिए जिनमन्दिरादि भी पूज्य है। यह महात्मा पुरुषोंका माहात्म्य है कि जिनके आश्रय से छोटीसी छोटी भी वस्तु सत्कारके योग्य हो जाती है। यदि यही कहना है तो फिर शासनदेवता सत्कार के योग्य क्यों नहीं है उन्होंने क्या जिनदेवका आश्रय नहीं पाया है क्या वे जिन धर्मके धारक भक्त नहीं हैं ऐसे कहनेका कोई साहस करेगा? कदाचित् कहीं कि जिनदेवके शासनको एक छोटी जातीका मनुष्य भी मानने लग जाय तो क्या उसके साथ भी वैसा ही सत्कारादि करना चाहिए जैसा और भाईयोंका किया जाता है? अवश्य। उसमे हानि क्या है! जैन शासनोंमें यदि वह जैन मतका अनुयायी है तो अवश्य सत्कार का पात्र है। जैन शास्त्रोंमें हजारो ऐसी कथायें मिलेगी कि छोटी छोटी जातीके मनुष्योंने संयम धारण किया है तो क्या वे सत्कारादिके पात्र नहीं कहे जा सकते, यह केवल भ्रम है?

भगवज्जिनसेनाचार्य आदि पुराण में—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शान्तिहेतवे ।
क्रूरास्तु देवता हेया यासां स्याद्वृत्तिरामिषैः ॥

अर्थात्— विघ्नेशयक्षादि शासनदेवता शांतिके लिए मानने योग्य हैं और जो मांससे जिसकी वृत्ति है ऐसे क्रूर देवता हैं वे त्यागने योग्य हैं।

जो अर्थ श्लोकोंसे मिलता हुआ किया गया है वह तो झूठा बताया गया और जो वास्तवमें झूठा और जैन शास्त्रोंसे बाधित है वह आज सत्य माना जा रहा है। क्या कोई परीक्षक नहीं है जो सत्य और झूठ को अलग करके बता दे, ठीक तो है जहां शास्त्रोंकी ही प्रमाणता नहीं है। उस जगह बिचारा परीक्षक भी क्या कर सकेगा?

प्रश्न— यह कैसे माना जाय कि आदि पुराण का श्लोक अन्य मति देवताओंके लिए निषेधक है?

उत्तर—इसमें और प्रमाणोंकी आवश्यकता ही क्या है साफ यह श्लोक ही कह रहा है कि- जिनकी मांससे वृत्ति है वे क्रूर देवता त्याज्य हैं और अन्य मतियोंमें देवताओंके लिए मांस बलि आदिका व्यवहार प्रत्यक्ष देखा जाता है। इसलिये स्पष्ट है कि यह अन्य देवताओंके लिए ही निषेध है। जिन शासनदेवता तो मांसादि व्यवहारसे दूर रहते हैं। वे शांतिके लिए ही होते हैं ऐसा आचार्योंने स्पष्ट किया है।

प्रश्न—पूज्य तो जिन भगवान् को छोड़कर और कोई नहीं हो सकता। फिर शासनदेवता पूज्य कैसे कहे जा सकते? कदाचित् कहो कि शासनदेवता जिनशासक के रक्षक हैं तथा धर्मात्मा लोगोंकी सहायता करते हैं, इसलिए वे पूजनके योग्य हैं? परन्तु यह भी भ्रम है, क्योंकि जिन पूजनसे विघ्नोंका नाश हो सकेगा शासन देवताओंके पूजनकी क्या आवश्यकता है?

शास्त्रोंमें कहा भी है—

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी भूतपन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥

उत्तर— यह तो सत्य है कि जिन भगवानको छोड़कर इस संसारमें जीवोंके लिये दूसरा कोई पूज्य नहीं है। और न हमारा यह कहना है कि जिनेन्द्रकी उपासना छोड़कर शासनदेवता ही पूजे जावे परन्तु यहां पर पूजनका जैसा अर्थ समझा जाता है वैसा शासनदेवताओंके विषयमें कहना नहीं है। पूजनका अर्थ सत्कार है यह सत्कार अधिकरणोंकी अपेक्षा से अनेक भेदरूप है। माता, पिता का सत्कार उनके योग्य किया जाता है। पढ़ानेवाले विद्यागुरुओंका सत्कार उनके योग्य किया जाता है। इसी तरह अपनेसे बड़े, मित्र, बन्धु, मुनि; श्रावक आदि का उनके योग्य सत्कार करना उचित है; इसे ही सत्कार कहो; विनय कहो; या पूजन कहो ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इसी प्रकार जिन भगवान तथा शासन देवताओंका सत्कार भी यथायोग्य उचित है। इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि– शासनदेवता सत्कारके ही योग्य नहीं है। हां, यह बात तब उचित कही जाती जब शासन देवता और जिन भगवानकी पूजन का विधान समान कर देते।

*विश्वेश्वरी शब्दका विवेचन अनेक ग्रंथोंमें है।

महोत्सवोंमें यथायोग्य भव्य पुरुषोंको जानने चाहिये ।

जिनदेवकी पूजन विधिके अन्तमें विसर्जन करते समय में विसर्जन पाठमें इस तरह पढ़ा जाता है कि—

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम् ।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥

पूजनकी आदिमें जिन जिन देवताओंका मैंने आव्हानादि किया है। भक्ति करके पूजा (सत्कार) को प्राप्त किया सभी अपने अपने स्थानमें जावे ।

और भी शासनदेवताओंका आदि पुराणमें सम्बन्ध है। इसलिये शासनदेवता सादर विनयके योग्य हैं।

वर्धमान पुराणके १२ वे अधिकार में—

लभन्ते हि यथा यक्षा जिनांघ्रयब्जाश्रयान्महम् ।
तथा नीचा मनुष्याश्च पूजां तव प्रसादतः ॥

अर्थात— जिस तरह इस संसारमे यक्षादि देवता तुम्हारे चरण कमलोंके आश्रय से पूजाको प्राप्त होते हैं उसी तरह हुये, सब देवता अपने योग्य पूजनके भागको ग्रहण करके अपने अपने स्थानको जावें। इस श्लोकमें 'यथाक्रमं लब्धभागा' 'यथास्थितिम्' आदि पद ऐसे पडे हैं जिनसे स्पष्ट शासन देवतादि का बोध होता है।

प्रश्न— इन पदोंसे जिनदेव से भिन्न भी कोई और देवता प्रतीति होते हैं परन्तु जिनदेवसे अन्य साधु आचार्य सरस्वती आदिका ग्रहण कर लेंगे फिर तो किसी तरहका विवाद नहीं रहेगा ?

उत्तर—यह कहना उचित नहीं है क्योंकि श्लोक में-
" आहूता ये पुरा देवा " अर्थात्- जो देवता मुझ करके आव्हान किये गये हैं, इसमें देव शब्द, पडा हुआ है। साधु, आचार्यादिक को देव शब्द से आव्हानन नहीं किए जाते, इसलिये वास्तवमें शासनदेवताओंका ही ग्रहण है।

इन्द्रनंदि संहिता में-

देवदेवार्चनार्थं ये समाहूता श्चतुर्विद्याः।
ते विधायाऽर्हतां पूजां यान्तु सर्वे यथायथम्॥

पूर्व श्लोक में— " ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या " यह पद हैं इसका तात्पर्य भक्तिसे अर्थात्- विनय पूर्वक ही होता है। जिसमें भक्ति नहीं फिर उसका सत्कार ही क्या होगा। भक्तिका यह अर्थ नहीं कि- जिन भगवान पूजे जाते हैं वैसे हो शासनदेवता भी, इसीसे श्लोक में "लब्धभागा यथाक्रमम्" शब्दकी सार्थकता है।

यशस्तिलक मे अभिषेक विधि में-

योगेऽस्मिन्नाकनाथ, ज्वलन पितृपते नैगमेय प्रचेतो।
वायो रे देश रोषोद्रुप सपरिजना यूयमेत्य ग्रहाग्राः॥
मन्त्रैर्भूः स्वः सुधाधैरधिगत बल्यः स्वासु विक्षूपविष्टाः
क्षेपोयः क्षेमदक्षाः कुरुत जिनसवोत्साहिनं विघ्नशांतिम्

" शास्त्रसार समुच्चय " श्री माघनंद्याचार्यकृत टीकाकार आ० श्री देशभूषणजी महाराज देव मूढता प्रकरण में-

आत्मशुद्धिके लिये संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिये सर्व कर्म कलंक से छूटनेके लिए वीतराग देवाधिदेव की ही पूजा उपासना करनी चाहिये, अन्य किसी देवकी नही।

धार्मिक तथा लौकिक सत्कारमे सहायता सहयोग प्राप्त करने के लिए जिनेन्द्र भक्त यथा पद्मावती आदि सम्यग्दृष्टि देवोंका भी साधार्मिक वात्सल्य भावना से उचित आदर सत्कार करना चाहिए जैसा कि प्रतिष्ठा आदि के समय करते हैं परन्तु आत्म शुद्धिका कारण न समझना चाहिए और न अर्हंत सिद्ध देवाधिदेवके समान पूजना चाहिए।

माननेवालोंके लिए तो दिग्दर्शन मात्र उपयोगी होता है और न माननेवालोंके लिए तो चाहे सिद्धांत पुराण भी खोलकर क्यों न रख दिए जाय वे तो हठ ग्राहिता से तथा पंथमोह से क्यों हो ?

जिन प्रतिमाका लक्षण- जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय में—

प्रातिहार्याष्ट को पेता यक्षयक्षी समन्विताम् ।
स्वस्वलांच्छन संयुक्ता जिनार्या कारयेत्सुधीः ॥

अर्थात्- जो आठ प्रातिहार्योंसे सुशोभित हैं, यक्ष यक्षी सहित हैं और अपने अपने चिन्होंसे सुशोभित हैं ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानोंको बनवानी चाहिए।

वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ—

यक्ष च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासन देवताम् ।
लांछनं पाद पीठाधः स्थापयेद् यस्य यद्भवेत् ॥

अर्थ—जिन प्रतिमाके दाईं ओर यक्ष की मूर्ति होनी चाहिए बाईं ओर शासनदेवता अर्थात्—यक्षी को मूर्ति होनी चाहिए और सिंहासनके नीचे जिन को प्रतिमा हो। उनका चिन्ह होना चाहिए।

कारयेदर्हतो बिम्बं प्रातिहार्य समन्वितम्।
यक्षाणां देवतानां च सर्वालंकार भूषितम्॥
स्ववाहना युधोपेतं कुर्यात्सर्वांग सुन्दरम्।

अर्थ— जिन प्रतिमा आठ प्रातिहार्य सहित होनी चाहिये। ये यक्ष यक्षी समस्त अलंकारोंसे सुशोभित होने चाहिये अपने अपने आयुध और वाहन सहित हो तथा सर्वांग सुंदर हो।

त्रिलोकसार मे- टीकाकार- पं. टोडरमलजी

सिंहासणादि सहिया विणोय कुन्तल सुवज्जमय पंता।
विद्रुय हरदा किसलय सोहाधर हत्थमायत तला॥
सिरो देवी सुअ देवो सव्वापाहण कुमार जक्खाणं।
रूवाणि जिणया से मंगल दुविह मावि होई॥

अर्थ—जिन प्रतिमाके निकट इन चारिनका प्रतिबिंब होई है।

प्रश्न— जो श्री देवी तो धनादिक रूप है और सरस्वती जिनवाणी हैं इसका प्रतिबिंब कैसे होई है?

उत्तर— श्री और सरस्वती ये दोऊ लोकमे उत्कृष्ट हैं ताते इनका देवांगनाका आकार रूप प्रतिबिंब होई है। बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त हैं ताते तिनके आकार ही है। आठ मंगल द्रव्य हों।

स्थापयेदर्हतां छत्रत्रया शोक प्रकीर्णकं ।
पीठं भामण्डलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुन्दुभिम् ॥
स्थिरेतरार्चयोः पाद पीठ स्याधो यथा यक्षम् ।
लांच्छनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षो यक्षी च वाम के ॥

अर्थ— अर्हन्त प्रतिमाके निर्माण के साथ साथ तीन छात्र, अशोकवृक्ष, सिंहासन भामण्डल, चमर दिव्यध्वनि दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहार्य अंकित होने चाहिए। प्रतिमा चाहे चल हो या चाहे अचल हो, परन्तु उनका चिन्ह सिंहासन के नीचे होना चाहिए। दाहिने ओर यक्ष और बाईं ओर यक्षी होनी चाहिए।

संहिता, प्रतिष्ठापाठादि ग्रन्थों में शासनदेवताओं के आव्हाननादिके विषयमें खुलासा लिखा है उसे किसी भी तरह अयोग्य नहीं बता सकता और न शासनदेवताके आराधन वगैरह से देव मूढता का दोष लगता है।

जो लोग यक्ष यक्षीको शासनदेवता नहीं मानते वे लोग भी वसुबिंदु प्रतिष्ठा पाठको मानते हैं इसमें भी अन्य प्रतिष्ठापाठोंके समान ही कहा है कि— अरहन्त की प्रतिमामें आठ प्रातिहार्य यक्ष यक्षी और चिन्ह अवश्य होना चाहिए।

इसी प्रकार आचार्योंने जगह जगह कहा शासन देवी-देवताओंका यथायोग्य सत्कार करना चाहिए प्राचीन आचार्योंकी कृतिका उच्छेद करना महापाप है।

श्री गोमटसार कर्मकाण्डके ६ वे अधिकारकी समाप्ति मे श्री नमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्तीने कहा है कि—

राजा चामुण्डरायने श्री नेमिनाथ के चैत्यालयमें बहुत ऊंचा स्तंभ खड़ा किया, उसपर यक्षदेवकी मूर्ति स्थापित की है ऐसा वह चामुण्डराय राजा सदा जयवंत हो।

गोम्मट संगहसुत्तं, गोम्मटसिहरुवरि गोम्मट जिणोयं।
गोम्मटरायविणीम्य दक्खिण कुक्कुडजिणो जयउ ।।
जेणुब्भियथम्मुवरिम जक्खतिरीटग्ग किरण जल धोया
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयऊ ।। ५३ ।।

राजा चामुण्डरायका भी श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती जैसे परम दिगम्बर आचार्य महाविद्वच्छिरोमणि ने सम्मान किया।

" जो सो राओ गोमटो जयऊ " इस वाक्य से अथवा शब्द से प्रकट है, इस शब्दके प्रयोगसे यक्ष देवकी मूर्ति स्थापित करना निमित्त व्यंजित होता है।

क्या राजा चामुण्डराय मिथ्यादृष्टि था? वह यक्ष कुदेव था?

जो जिनेन्द्र भगवान के बनाये हुए मार्गके विरुद्ध प्रचार करे.... वही कुदेव है और जो जैसा जिनागममें बताया हुआ मार्ग है उसी का उसी रूपसे प्रचार कर धर्म प्रभावना करे, उसमें सहयोग दे वह कैसे कुदेव हो सकता है।

जो शासनदेव जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमाओंके आस पास यक्ष यक्षिणी रूपमें ऐसी मूर्तियां प्राचीन मन्दिरों, तीर्थ

स्थानों गोम्मटेश्वर बाहुबली बड़वानी, खण्डगिरी, उदयगिरी आदि बहुतसे मन्दिरोंमें मणिभद्र, पूर्णभद्र, पद्मावती देवी, चक्रेश्वरीदेवी आदि की प्रतिमायें विद्यमान हैं।

भः पार्श्वनाथको प्रतिमायें हर जगह फणासहित हैं क्या वह धरणेन्द्र युक्त नहीं है? फिर कैसे शासनदेवोंको कुदेव कहा जा सकता है। हम यह नहीं कहते हैं कि— शासनदेव हमारे तरण तारण हैं। उनके पदानुसार उनका सन्मान किया जाता है और करना चाहिये आज भी यही व्यवहार है।

शासनदेवों, देवियों द्वारा जैन धर्मकी महान प्रभावना हुई और होती रहेगी।

कई प्रांतोंमें अन्ध विश्वास, अन्ध श्रद्धा जमी हुई थी कि क्षेत्रपाल पद्मावती आदि कुदेव है नहीं मानना चाहिये परन्तु कहनेवाले सज्जन ही प्रतिष्ठादि अवसरों पर शासन देवताओंका आदर सत्कार करते देखे गये।

स्व० चन्द्रसागरजी, आ० वीरसागरजी, आ० शिवसागरजी एवं आ० महावीरकीर्तिजी का ससंघ चारो तरफ विहार किया तब श्रावकोंका कर्तव्य तथा शासनदेवता सम्यग्दृष्टि हैं धर्म तथा धर्मात्माओंपर आपत्ति यानि कुदेवों द्वारा उपद्रव अशांति करने पर निराकरण कहते हैं इसलिए शासन देवताओंका यथावत आदर सत्कार करना चाहिये जिससे इच्छित कार्य की सफलता मिलती है तथा आई हुई आपत्ति टल जाती है।

वि० सं० २०१५ में महान तपस्वी आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज डेह मे पधारे। करीबन एक मास ठहर कर फिर नया मन्दिर से विहार कर पुराना (बीस पंथी) मन्दिर में दर्शनार्थ गये श्रावकों जैन जनता ठहरने के लिए प्रार्थना की तब आचार्य श्रीने उसी समय सारगर्भित भाषण दिया—

'यहासे मेरी भावना विहार करनेकी निश्चितरूप से थी; परन्तु यहां का चमत्कारी क्षेत्रपाल विहार करनेसे मुझे रोक रहा है, फिर करीबन एक मास ठहरकर काफी जीवोंका कल्याण कर सत् मार्गका दिग्दर्शन कराया।'

शासनदेवताओं एवं धरणेन्द्र पद्मावती आदिको कोई भी श्रावक भगवान् समझ कर इनको पूजा नहीं करता है। सभी श्रावक उन्हे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यग्दृष्टि जानते हैं, परन्तु वे भगवान् के परम श्रद्धावान हैं उनका चरण सेवामें सदैव तत्पर रहते हैं। धर्मकी रक्षा करते हैं, ऐसी अवस्थामें श्रावक उनको साधर्मी समझ कर वात्सल्य भावसे आदर सत्कार करता है जैसे घर पर जवाई का आदर सत्कार किया जाता है किंतु साथमे आनेवाले जवाई के नाई का भी सत्कार किया जाता है और जो भोजन जवाई को खिलाएं जाते हैं वही नाई को भी खिलाया जाता है परन्तु नाईका सत्कार होने पर भी उसे जवाई रूपमें कोई नहीं मानता है।

जिस समय वर घोडी पर बैठकर तोरण दरवाजा पर आता है; तब उस घोडी को भी आरती की जाती है वर के साथ तथा माथे पर अक्षत आदि लगाये जाते हैं; यह बात यहां प्रकरण में है कि– भगवान की अष्ट द्रव्य से पूजा की जाती है उसीमें से एक अर्घ्य सत्कार सूचनार्थ शासनदेवोंको भी चढाया जाता है। उन्हे भगवान समझ कर कोई पूज्य मानता नहीं है। अतः शास्त्रीय विषयों-आचार्योंके वचनों पर मिथ्या भ्रम फैलाना सर्वथा अनुचित है।

सम्मेदशिखरमाहात्म्य
प्रकाशित !

सिद्धांताचार्य पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री की समर्थ
लेखनीसे सम्पादित 'श्री सम्मेदशिखरमाहात्म्य'
प्रकाशित हो गया है । लगभग ३००
पृष्ठोंके इस ग्रन्थका मूल्य १०) रु.
है । पाठक यथाशीघ्र इस
ग्रन्थ के लिए निम्न
पते पर संपर्क
करें ।

धर्मवीर जैन ग्रन्थमाला

९, इंडस्ट्रीयल इस्टेट, होटगी रोड,
सोलापूर - ४१३००३
(महाराष्ट्र)

हमारे ग्रन्थमालासे प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची.

भरतेश वैभव भाग १ (हिंदी)	७-००
,, भाग २ (हिंदी)	१०-००
भरतेश वैभव भाग १ (मराठी)	७-००
,, भाग २ (मराठी)	१०-००
जैन बालबोध १-२ भाग	०-७५
जैन बालबोध ३-४ भाग	१-००
जैनव्रतकथा संग्रह	२-००
जैननित्यपूजापाठ	१-२५
छहढाला अर्थसहित	०-७५
बाहुबलि चरित्र व पूजा	०-१०
जैनवाचनपाठमाला	०-७५
कल्याणकारक	१५-००
पार्श्वपुराण	२-००
प्रतिष्ठातिलक	१५-००
ऋषिमंडल स्तोत्र	१-५०
संपतशुक्रवार कथा	१-००